योग में प्रमाण पत्र

कोड संख्याः CIY-01

प्रथम प्रश्न पत्र
योग विज्ञान का परिचय

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

सौजन्यः पं. सुन्दर लाल शर्मा (मुक्त) विश्व विद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर

योग में प्रमाण पत्र

कोड संख्याः CIY-01

प्रथम प्रश्न पत्र
योग विज्ञान का परिचय

अनुसूची

इकाई 1 योग विज्ञान की संकल्पना 4

योग विज्ञान के आधार क्षेत्र

भारतीय समाज में योग विज्ञान का स्वरूप

आगम योग साधना

योग साधना का सैद्धांतिक पक्ष

योग विज्ञान का व्यवहारिक महत्व

इकाई 2 योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास 12

परम्परानुसार विकास

ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास

इकाई 3 योग विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र 22

योग विज्ञान की अवधारणा

स्वास्थ्य प्रबंधन और अष्टांगिक मार्ग

योग विज्ञान के क्षेत्र

खण्ड 1: योग विज्ञान की संकल्पना

इकाई 1

संकल्पना

योग विज्ञान की संकल्पना

इकाई 2

ऐतिहासिक विकास

इकाई 3

अवधारणा एवं क्षेत्र

खण्ड 1 : योग विज्ञान की संकल्पना

प्रथम प्रश्न पत्र **''योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरूप''** के अध्ययन हेतु खण्ड 1 **योग विज्ञान की संकल्पना** को तीन ईकाईयों में विभाजित किया गया है। इनमें इकाई 1 **योग विज्ञान की संकल्पना** इकाई 2 **योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास** इकाई 3 **योग विज्ञान की अवधारणा** को सम्मिलित किया गया है।

खण्ड संरचना

1.0 प्रस्तावना 3

1.1 उद्देश्य 3

1.2 विषय प्रवेश 3

1.3 इकाई 1 योग विज्ञान की संकल्पना 4

- 1.3.1 योग विज्ञान के आधार क्षेत्र
- 1.3.2 भारतीय समाज में योग विज्ञान का स्वरूप
- 1.3.3 आगम योग साधना
- 1.3.4 योग साधना का सैद्धांतिक पक्ष
- 1.3.5 योग विज्ञान का व्यवहारिक महत्व

1.4 इकाई 2 योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास 12

- 1.4.1 परम्परानुसार विकास
- 1.4.2 ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास

1.5 इकाई 3 योग विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र 22

- 1.5.1 योग विज्ञान की अवधारणा
- 1.5.2 स्वास्थ्य प्रबंधन और अष्टांगिक मार्ग
- 1.5.3 योग विज्ञान के क्षेत्र

1.6 सारांश 25

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर 26

1.8 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ 28

1.0 प्रस्तावना

योग विज्ञान छः माह पाठ्यक्रम में दो सैद्धान्तिक प्रश्न पत्रों का अध्ययन आपको करना है। प्रथम प्रश्न पत्र **योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरूप** के अर्न्तगत पाँच खण्डों में सोलह इकाईयों का अध्ययन आपको करना होगा।

प्रथम प्रश्न पत्र के खण्ड एक को तीन इकाईयों में बाँटा गया है। इस खण्ड को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे कि योग विज्ञान क्या है। **प्रथम इकाई** के अध्ययन से आपको योग विज्ञान की संकल्पना, योग विज्ञान के आधार क्षेत्र, भारतीय समाज में योग विज्ञान का स्वरूप, आगम योग साधना, योग साधना का सैद्धान्तिक पक्ष तथा योग विज्ञान के व्यवहारिक महत्व की जानकारी हासिल हो सकेगी।

द्वितीय इकाई के अध्ययन से आपको योग विज्ञान के इतिहास की जानकारी प्राप्त होगी, कि किस प्रकार योग विज्ञान का परम्परानुसार इतिहास माना जाता है और किस प्रकार से परम्परायें विकसित हुई। योग विज्ञान के ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास का अध्ययन किस प्रकार हुआ एवं वर्तमान समय में योग का स्वरूप किस अवस्था तक आ पहुँचा है इसकी जानकारी हासिल हो सकेगी।

तृतीय इकाई के अध्ययन से आपको योग विज्ञान की अवधारणा की जानकारी प्राप्त होगी, कि स्वास्थ्य प्रबंधा में महर्षि पतंजलि प्रणीत अष्टांगिक मार्ग की उपयोगिता एवं योग विज्ञान के वर्तमान में व्यवहारिक प्रयोगों के क्षेत्र कौन कौन से है।

1.1 उद्देश्य

इन इकाईयों को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि निम्नलिखित बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

- योग विज्ञान क्या है यह ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान के आधारभूत क्षेत्रों, का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान के सिद्धांतों और तकनीकों का सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का भारतीय समाज में स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का जीवन में क्या व्यवहारिक महत्व है इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का परम्परानुसार विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास का ज्ञान प्राप्त सकेंगे।
- योग विज्ञान की अवधारणा को स्पष्ट रूप से जान सकेंगे।
- स्वास्थ्य प्रबंधन में अष्टांगिक मार्ग की उपयोगिता जान सकेंगे।
- योग विज्ञान के प्रमुख क्षेत्रों की जानकारी हासिल कर सकेंगे।

1.2 विषय प्रवेश

हमारे जीवन के **जन्म ग्रहण से लेकर मृत्यु होने तक मैं किये गये समस्त व्यवहार योग** है। महर्षि अरविंद भी ऐसा ही मानते है कि ''सम्पूर्ण जीवन योग है'' (Whole Life is Yoga) जीवन के कार्यकलापों में कुछ व्यवहार धनात्मक होते है कुछ ऋणात्मक लेकिन विशद् दृष्टिकोण से होते योग ही है। इन धनात्मक और ऋणात्मक व्यवहारों में धनात्मक व्यवहारों को अपनाने या ग्रहण करने का व्यवस्थित या सम्यक् ज्ञान जिस विज्ञान से होता है उसे ही हम योग विज्ञान के नाम से जानते है, इस प्रकार योग एक व्यवहारिक विज्ञान है। योग विज्ञान बहुत व्यापक विषय है यह जहाँ मोक्ष शास्त्र है वही आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान, मनोचिकित्सा विज्ञान, शिक्षा विज्ञान, दर्शन शास्त्र, मूल्य

विज्ञान एवं प्रबंध विज्ञान का भी व्यवहारिक अंग हैं। विज्ञान की विधियों और प्रणालियों की तरह ही योगविज्ञान भी अपने आप में पूर्ण विज्ञान है तथा इसकी अपनी विधियां, प्रणालियाँ एवं तकनीके है। इस प्रकार योग पद्धति एक –

(1) वैज्ञानिक विद्या है।
(2) जीवन में व्यवहार की आदर्श कला है। और
(3) पृथ्वी में उत्पन्न एवं विद्यमान समस्त संस्कृतियों के श्रेष्ठतम् मूल्यों से युक्त मानवीय आचार एवं व्यवहार का लिखित संविधान है।

वर्तमान गतिशील विश्व में स्वास्थ्य एवं शांति की तलाश में भटक रहे लोगों को योग विज्ञान (दर्शन) एक अंतिम सहारे के रूप में दिखाई देता है। योग विज्ञान का बहुत विस्तृत क्षेत्र है इसके कई संकाय एवं उनके भी उपविभाग है। किन्तु प्रचलन में योग शब्द का अर्थ केवल आसन, यौगिक षट्कर्म, प्राणयाम, ध्यान की कुछ दिशा निर्देशित विधियों के अर्थ में ही सिमट् कर प्रदर्शित हो रहा है। योग विज्ञान चेतना का विज्ञान है यह जड़ शारीरिक क्रियाओं से अत्यधिक श्रेष्ठ विज्ञान है ऐसा न होता तो योग आसनों में महारत जिम्नास्टिक के खिलाड़ी **बिना प्रयास के ही योगत्व हासिल कर लेते।** योग **''शरीर का नहीं मन के नियंत्रण द्वारा शरीर पर अधिकार करने की कला** एवं **मन के नियंत्रण द्वारा चित्त को शांत एवं सहज रखने का अभ्यास** एवं **वैराग्य युक्त व्यवहार** के रूप में लिया जाता है। इसमें योग को प्राप्त करने हेतु अभ्यास एवं वैराग्य की सतत् साधना करना पड़ता है।

1.3 इकाई 1 : योग विज्ञान की संकल्पना

1.3.1 योग विज्ञान के आधार क्षेत्र उपरोक्त विषय प्रवेश की प्रस्तावना के संदर्भ में हम योग विज्ञान को दो प्रमुख आधार क्षेत्रों में बाँट सकते है

(1) योग विज्ञान का यम क्षेत्र (2) योग विज्ञान का नियम क्षेत्र

जिस प्रकार ज्ञान योग में प्रवेश हेतु **विवेक और वैराग्य** दो प्रमुख आधार क्षेत्र है उसी प्रकार राजयोग की प्राप्ति यम क्षेत्र एवं नियम क्षेत्र में प्रवेश करने पर ही संभव है।

(1) योग विज्ञान का यम क्षेत्र

मनुष्य के नैतिक प्रशिक्षण की विधियाँ यम कहलाती है इन विधियों के पाँच प्रकार है

(1) अहिंसा
(2) सत्य
(3) अस्तेय
(4) ब्रम्हचर्य
(5) अपरिग्रह

'यम' धातु से बनें इस शब्द का अर्थ है नियन्त्रण करना। पाँचों यमों द्वारा साधक अपने ऊपर नियंत्रण स्थापित करता है। अपने ऊपर नियंत्रण करने से समाज को भी स्वतः ही लाभ प्राप्त होता है इस कारण इन्हें यम कहते है। योग साधना में प्रवेश करने वाला साधक व्यक्तिगत स्तर पर आन्तरिक शुद्धि व सात्विक मनोवृत्ति निर्मित कर सकने में इन यमों द्वारा सक्षम हो पाता है। **मन, वचन व कर्म** से इनका पालन स्वयं के साथ समाज के लिए भी अत्यंत लाभदायक है।

सामाजिक व्यवहार में पूर्णरूप से इन यमों का पालन नहीं किया जा सकता इसे ही ध्यान में रखकर महर्षि पंतजलि ने ग्रहस्थ व्यक्तियों के लिए इनके पालन में कुछ ढील दे दी है। जब इनका पालन प्रत्येक स्थिति, समय एवं काल में अनिवार्य रूप से किया जाता है तो इन्हें **व्रत** कहाँ जाता है तथा ये पाँच यम **पंचमहाव्रत** कहे जाते है। केवल यम क्षेत्र में ठीक से प्रवेश करके भी योग के अन्तिम लक्ष्य कैवल्य को प्राप्त किया जा सकता है। यम विशुद्ध रूप से **मानसिक प्रशिक्षण** का क्षेत्र हैं।

(2) योग विज्ञान का नियम क्षेत्र

मनुष्य के लिए कर्म करने के आदर्श सिद्धांत नियम के क्षेत्र के अन्तर्गत आते है इन्हें भी पाँच प्रकारों में बाँटा गया है।

(1) शौच (बाह्य एवं अभ्यन्तर)
(2) संतोष
(3) तप
(4) स्वाध्याय
(5) ईश्वरप्रणिधान

नियम विशुद्ध रूप से क्रियात्मक है। इनके द्वारा प्रमुखतः **शरीर की शुद्धि** एवं **इन्द्रियों पर नियंत्रण** किया जाता है। नियम प्रमुखतः शारीरिक अभ्यास है, और गौण रूप से मानसिक अभ्यास इनके अभ्यास से साधक का स्वयं का अधिकत्तम भला होता है। नियम साधक के कर्मों का परिष्कार कर उसके अन्तःकरण को निर्मल और निःसंग बनाता है। मन की पवित्रता से चित्त में अस्थिरता या चचंलता नहीं आने पाती चित्त की सभी बाह्य वृत्तियाँ अभ्यन्तरमुखी होकर धीरे–धीरे शांत होने लगती है और अन्तः करण में ज्ञान का प्रकाश फैलने लगता है। इस प्रकार पाँचों नियमों का विधि पूर्वक सतत् पालन योग के लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है। नियमों का महत्व इतना अधिक है कि **अभ्यास एवं वैराग्य** की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले **क्रियायोग** के लिए इनके तीन अंग **तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान** का अभ्यास बताया गया है। नियम का क्षेत्र योग साधना का द्वितीय आधारभूत क्षेत्र है जो योग साध ाना के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करा सकता है। अतः मन वचन एवं कर्म से नियमों का पालन करना आवश्यक है।

यम और नियम योग विज्ञान की दो साधना प्रणालियाँ केवल योग साधक के लिए ही नहीं बल्कि संपूर्ण समाज व्यावस्था का कार्य सुचारू ढंग से चल सके इस हेतु भी आवश्यक हैं सुन्दर सामाजिक व्यवस्था (आदर्श समाज) के लिए इनका आचरण में व्यवहारिक उपयोग होना अनिवार्य हैं। आज समाज में विकृति आने के प्रमुख कारणों में से यम नियम का पालन न होना भी एक कारण है। यदि समाज के सभी व्यक्ति यम नियमों का पालन स्वयं करने लगे तो आदर्श समाज स्वयं ही बन जावेगा, जहाँ अशांति एवं अव्यवस्था नहीं रह पायेगीं। यम का पालन तो प्रत्येक जाति, ध र्म, देश, काल, अवस्था और आश्रम या मन के लोगों के लिए अनिवार्य है यदि वे सही मायने में सामाजिक प्राणी होना चाहते है। इस प्रकार योग विज्ञान समाज के लिए आदर्श व्यवहार का संविधान है।

यम नियम के बिना कोई अभ्यासी योग का अधिकारी नहीं हो सकता। यह न केवल अभ्यासियों के लिए ही वरन् सभी आश्रमों के व्यक्तियों के लिए अति आवश्यक है। इनमें यमों का सारे समाज से घनिष्ठ संबंध होता है, इस कारण इनके पालन में सब मनुष्य परतन्त्र हैं अर्थात् यह सब मनुष्यों का परम् कर्त्तव्य है, जैसा मनु जी का कथन है

यमान् रोवेत सततं न नियमान् केवलान बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन।।

अर्थात् बुद्धिमान को चाहिये कि **यमों** का लगातार सेवन करे, केवल **नियमों** का ही नहीं, क्योंकि केवल नियमों का सेवन करने वाला यमों का पालन न करता हुआ पतन की ओर उन्मुख हो जाता है।

अष्टांग योग ग्रंथ में स्वामी चरण दास ने यम एवं नियमों को विस्तार दिया है।

यम – अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, क्षमा, दया, धीरता, नम्रता, प्रमितभोजन और शुचिता।

नियम – तप, संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धांत, श्रवण, लज्जा, बुद्धि, तप एवं होम।

वर्तमान विश्व समुदाय में दार्शनिक विचारधाराओं के बीच योग पद्धति **''जीवन जीने की कला''** के सामुदायिक स्वरूप में संपूर्ण विश्व में स्थान पा रही है। इसे आज मानव के लिए **जीवन जीने की कला की संहिता (code of art of living)** के रूप में जाना जा रहा है। योग विज्ञान के सिद्धांतों और तकनीकों को चार भागों में बाँटा गया है।

(1) शारीरिक स्तर

(2) मानसिक स्तर
(3) भावनात्मक स्तर और
(4) आत्मिक स्तर

इन स्तरों के परिष्करण और उन्नयन हेतु योग विज्ञान के सिद्धान्तों को प्रयोग में लाया जा सकता है। इन चारों स्तरों के शुद्धिकरण हेतु योग विज्ञान या योग सिद्धान्त के पृथक–पृथक विभाग किये गये है। कुछ प्रमुख विभाग निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 01) के अनुसार है।

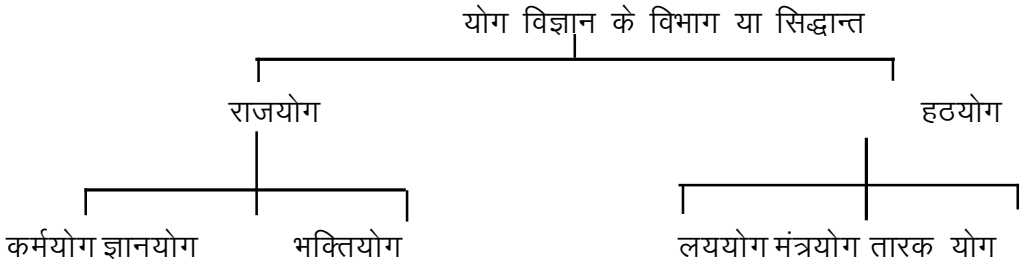

(तालिका क्रमांक 01)

1.3.2 भारतीय समाज में योग विज्ञान का स्वरूप

भारतीय वाड्यम में आध्यात्मिक और धार्मिक संदर्भ में जिन शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से देखा जाता है उनमें योग शब्द भी है। आत्मा, ब्रम्ह्य, जीव, मोक्ष, निर्वाण, धर्म और ईश्वर की भाँति योग उन थोड़े से गिने गिनाये शब्दों में है जिनका प्रयोग इस प्रसंग में सर्वाधिक होता है। भारतीय आध्यत्मिक विचारों को तीन प्रमुख धाराओं में विभक्त किया जा सकात है इनमें कालक्रमानुसार **वैदिक, बौद्ध** एवं **जैन** निम्नानुसार है

(अ) वैदिक विचारधारा

नैगम (वेद मूलक) इस विचारधारा के अनुयायी भारत में ज्यादा है ये वेदों को प्रमाण मानते है। वेद मूलतः संस्कृत भाषा में है इनकी श्रेणी में ही गीता, रामायण, महाभारत, महापुराण एवं उपपुराण तथा स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रों की गणना होती है। इन सभी ग्रंथों में योग चर्चा भरी पड़ी है, योगियों की कथायें आती है और योगाभ्यास, विभूतियों तथा सिद्धियों के संबंध में विस्तृत उपदेश मिलते है। साथ ही साथ योग विषयक स्वतंत्र उपनिषद एवं ग्रंथ भी प्राप्त होते है, देव देवियों, साधक साधिकाओं के वर्णन में प्रायः उनके योगिगम्य होने और योग विभूतियुक्त होने का उल्लेख मिलता है।

ईश्वर का प्रतीक चिन्ह प्रणव

(ब) बौद्ध विचारधारा

इस धारा का उद्भव महात्मा बुद्ध के उपदेशों से होता है। भारत में इस धारा के अनुयायी कम है किन्तु भारत

सहित बहुत से देशों में उनके विचारों एवं साधनाओं का आध्यात्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इस धारा के आधार ग्रंथ बुद्धदेव के आदेशों और उपदेशों से युक्त परिभाषा में है। भारत के बाहर भी इस विचारधारा के अत्यन्त सुन्दर ग्रंथ उपलब्ध होते है। यह विचार धारा भी योग और योगियों की चर्चा से भरी पड़ी है। बुद्ध का जीवन ही योग साधना का प्रमाणिक संदर्भ है। जिस मध्यम मार्ग **(प्रज्ञा, शील, समाधि)** का उन्होंने प्रसार किया वह उनकी वर्षों की योगसाधना की उपलब्धि थे **''अर्हत्''** जहाँ पहुँचकर फिर जन्म नहीं लेना होता, योगजन्य समाधि का पुरूस्कार है। स्वयं बुद्ध ने कई बार योग साधना का उपदेश दिया, उनके कई शिष्य महान् योगियों के रूप में विख्यात हुये है।

गौतम बुद्ध

(स) जैन विचार धारा

जैन धारा के प्रवर्तक वर्धमान महावीर स्वामी एवं उनके 23 पूर्ववर्तों तीर्थंकर थे। इनका भी मूल साहित्य पालि में है। बाद में संस्कृत में विशाल साहित्य सृजन हुआ। इस धारा में योग का रूप तपश्चर्या में बदल गया। साधु ही नहीं जैन गृहस्थ तक लंबे व्रत और उपवास आत्मशोधन हेतु करते है।

इन तीनों धाराओं का प्रर्वतन पावन भारत भूमि से ही प्रारंभ होकर आज तक सतत् प्रवाहमान है।

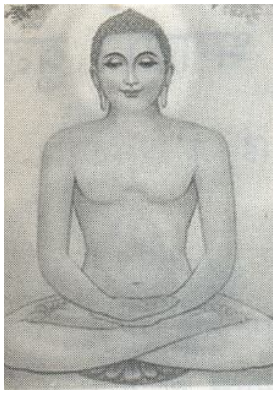

वर्धमान महावीर

1.3.3 आगम योग साधना

उपरोक्त तीन धाराओं के साथ ही साथ भारत भूमि में साधना का एक क्षेत्र ''तंत्र'' भी प्रवाहमान हैं तंत्र के दो प्रमुख भेद है (1) आगम और (2) बौद्ध तंत्र।

तन्त्र का जो रूप वैदिक समाज के बीच में प्रस्फुटित हुआ, उसे आगम कहते हैं। वेद निगम कहलाते है, तंत्र आगम है। हिन्दू संस्कृति में आज तांत्रिक विचार और उपासना पद्धति इतनी धुल मिल गई है कि अब विभाजन कर पाना मुश्किल है, नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म और काम्य कर्म दोनों धाराओं के सम्मिलन से प्रवाहित है। इनमें आज

प्रमुखतः व्यवहृत शैव और शाक्त तंत्र है। वैष्णव तंत्र जो बहुत पहिले प्रबल रूप में व्यवहार में थे आज भागवत धर्म के रूप में वैदिक सम्प्रदाय का अविच्छेद और अविछिन्न अंग बन गये है। बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय भारत से तिब्बत, चीन, मंगोलिया, कोरिया और जापान तक फैला है जो तंत्र मूलक है। आगम के समान बौद्ध तंत्र भी **योगचर्या** से ओत–प्रोत है महायान सम्प्रदाय वाले देशों में योग का प्रचलन है। योग साधना में तिब्बत भारत से आगे माना जाता है। योग साधना के क्षेत्र में भारत में सिद्धों एवं नाथों की परम्परा भी वर्तमान में प्रचलित है तथा योग साधकों के नाम पर भी कई पंथ वर्तमान है जैसे कबीर के अनुयायी – कबीर पंथी आदि। भक्ति काल के युग में योग का एक रूप भजन या संकीर्तन भी व्यवहार में आया और आज तक प्रचलित है।

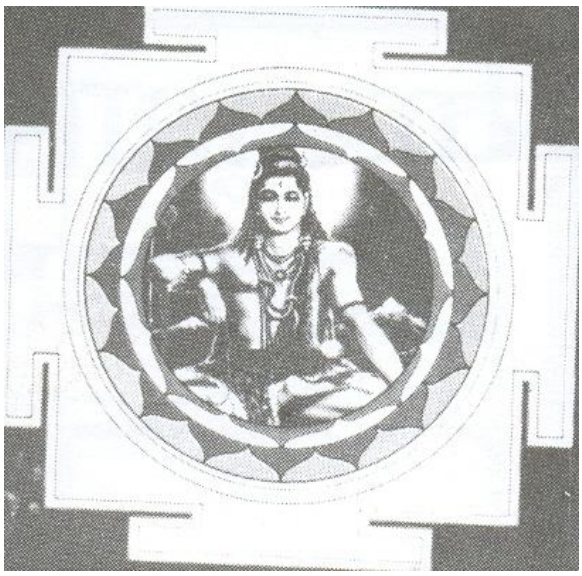

आगम के आदि उपदेष्टा

1.3.4 योग साधना का सैद्धान्तिक पक्ष

भारत के लंबे इतिहास में योग और उससे संबध रखने वाले शब्दों का व्यवहार धार्मिक और आध्यात्मिक वाड्मय में भारतीय आत्मा की अभिव्यक्ति का सहज माध्यम है। योगाचार भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। जहाँ–जहाँ भारतीय प्रभाव फैला या फैल रहा है, वहाँ–वहाँ योगाचार भी पहुँचा। वर्तमान भौतिकवादी गतिशील संस्कृति का घुटन भरा पहलू आज योग की उपादेयता को निरतंर बढ़ा रहा है। प्रायः प्रश्न उठाया जाता है कि अध्यात्म से योग का संबध ा है पर धर्म से उसका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं। ऐसे प्रश्नों का उत्तर है कि धर्म तो मुख्यतः आचार, सदाचार का नाम है। इस प्रसंग में मनुस्मृति का यह वाक्य उत्तर देने में पूर्णतः समर्थ सिद्ध होता है।

''अयं तु परमो धर्म्मः यद् योगेनात्मदर्शनम्''

योग के द्वारा आत्मा का दर्शन करना सबसे बड़ा धर्म है। आत्मस्थ या स्वस्थ होना भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थो (1) धर्म (2)अर्थ (3) काम और (4) मोक्ष में से योग की अवस्था प्राप्त करना मोक्ष पुरुषार्थ की अवस्था है। और इसी अवस्था को परम् पुरुषार्थ (कैवल्य) भी कहते है। इस अवस्था को प्राप्त करने हेतु योग विज्ञान सांख्य दर्शन की सैदांतिक पृष्ठभूमि में जिसमें प्रकृति और पुरुष दो मूल तत्वों की विवेचना की गई है, स्वीकार करता है। भगवान श्रीकृष्ण भी यही कहते है। कि ज्ञानी लोग सांख्य और योग में भेद नही करते। सांख्य का सृष्टि क्रम तालिका (क्रमांक 02) के अनुसार है।

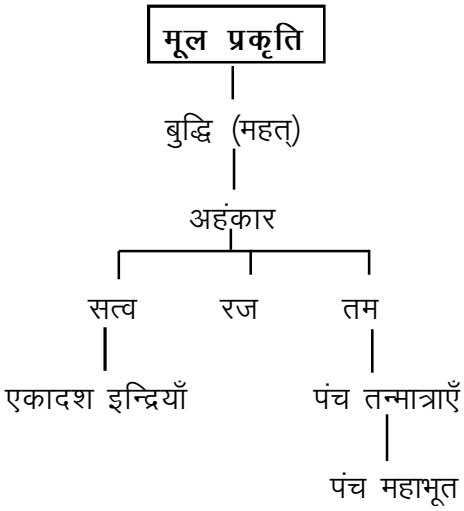

(तालिका क्रमांक 02)

सृष्टि क्रम की संक्षिप्त व्याख्या

(1) एकादश इन्द्रियाँ :– (अ) मन

(ब) ज्ञानेन्द्रियाँ :– कान , त्वचा, नेत्र, जिव्हा एवं नासिका

(स) कर्मेन्द्रिया :– वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ, एवं गुदा

(2) पंच तन्मात्राएँ :– शब्द, स्पर्श, रुप, रस, एवं गंन्ध

(3) पंच महाभूत :– आकाश, वायु, अग्नि , जल एवं पृथ्वी

आकाश

वायु

अग्नि

जल

पृथ्वी

पंच महाभूत

यह दृश्य जगत् और हमारा भौतिक शरीर इन्हीं पंच तत्वों के पंचीकरण से बना हैं हमारे शरीर को उपनिषद् पाँच कोशों में विभक्त करते है तथा स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ते है।

(1) अन्नमय कोश (दृश्य भौतिक शरीर)
(2) प्राणमय कोश (श्वास प्रश्वास को स्पंदन की शक्ति सामर्थ्य)
(3) मनोमय कोश (हमारी संकल्प–विकल्प की क्षमता)
(4) विज्ञानमय कोश (हमारी बृद्धि की निर्णयात्मकता)
(5) आनंदमय कोश (पूर्ण ज्ञान की अवस्था)

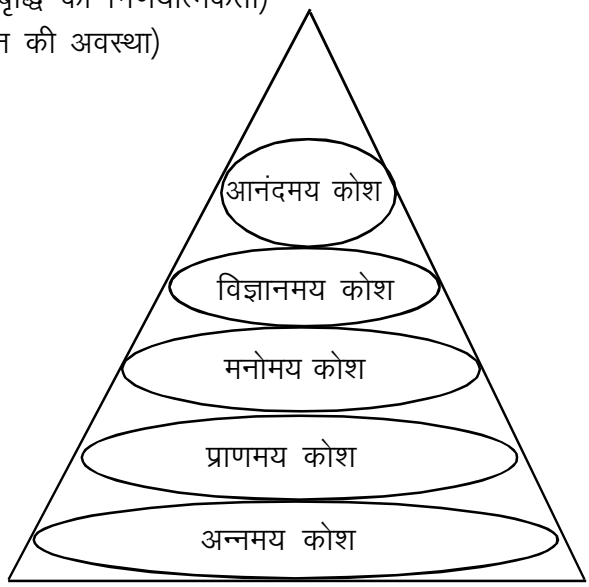

पंच कोश

आनंदमय कोश में प्रवेश ही योग में प्रवेश है। योग दर्शन का प्रतिनिधि ग्रंथ पातंजल योग सूत्र बड़े वैज्ञानिक ढंग से आत्मस्थ होने के लिए **चित्त वृत्तियों के निरोध** को योग या कैवल्य के रुप में व्यवहारिक रुप से **अष्टांगमार्ग** के रुप में निरुपित करता है। अष्टांग मार्ग के आठ अंग क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि है। यह आठ अंग मानवीय व्यवहार में मन के नियंत्रण के साधन के रुप में प्रस्तुत होते हैं इसी कारण योग विज्ञान को **भारतीय मनोविज्ञान** की संज्ञा प्रदान की गई है।

1.3.5 योग विज्ञान का व्यवहारिक महत्व

यौगिक जीवन पद्धति साधु सन्तों, महात्माओं और ब्रम्हचारियों जिन्होंने ग्रहस्थ आश्रम या सांसारिक बंधनों का त्याग कर दिया है, केवल उनके अपनाने का विज्ञान नहीं हैं। बल्कि योग पद्धति को कोई भी व्यक्ति विवाहित, अविवाहित स्त्री पुरुष अपना कर योग के वैज्ञानिक सिद्धांतों द्वारा अपने जीवन को सुखमय एवं सहज बना सकता है। व्यक्ति किसी भी आयु–वर्ग, व्यवसाय, धर्म , लिंग, जाति या सम्प्रदाय का हो। यौगिक आचार–विचार से व्यक्ति के गुणों में परिवर्तन आने लगता है। प्रत्येक व्यक्ति में तीन गुण विद्यमान होते है, राजसिक, सात्विक ओर तामसिक। **तमोगुण** – निद्रा, तन्द्रा, मोह, भय, आलस्य, दीनता, भ्रम, आदि उत्पन्न करता है। **रजोगुण** – चंचलता, चिन्ता, संसार कर्मो में प्रवृत्ति आदि पैदा करता है, जिससे दुख और शोक उत्पन्न होता है। **सतोगुण** से क्षमा, श्रद्धा, धैर्य, उत्साह, वीर्य, दान, दया आदि पैदा होते है। जिससे सुख और आनन्द की वृद्धि होती है। योग के **अभ्यास,** व्यक्ति को ''तम'' और ''रज प्रधान'' अवस्था से ''सत्व प्रधान'' अवस्था की ओर ले जाते है। इसलिए सुखी एवं निरोग जीवन हेतु **योगाभ्यास** परम् आवश्यक एवं **श्रेष्ठतम् मार्ग** है।

वर्तमान जीवन पद्धति दिन प्रतिदिन दुःखी, अशान्त और नीरस बनती जा रही है। इसका मूल कारण यह हैं कि उन्नति के नाम पर हम प्रतिस्पर्धा और तनावपूर्ण जीवन जीने लगे है। व्यक्ति का जीवन असन्तुलित हो गया है क्योंकि जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, समाजिक (नैतिक) स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य में सन्तुलन के कोई प्रयास ही नही किये जा रहे है। इस कारण व्यक्ति दुखित एवं निराश है। योग विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो **''व्यक्ति को उसके अस्तित्व के सभी पक्षों पर प्रभाव डालते हुए सन्तुलित करता हैं''** उसे पूर्ण स्वास्थ्य, समृद्धि, सुख और शांति प्रदान करता है। एवं व्यक्तित्व के सभी पक्षों को उर्ध्वमुखी कर व्यक्तित्व को आदर्श व्यक्तित्व (सहज मानव स्वभाव) के निर्माण में सहायक होता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1 योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से यम क्षेत्र पर प्रकाश डालिये ?

2 योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से नियम क्षेत्र पर प्रकाश डालिये ?

1.4 इकाई 2 : योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास

1.4.1 परम्परानुसार विकास

योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास तभी से शुरु हो जाता है जब से मनुष्य का अस्तित्व शुरु होता हैं। भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उदगम् ईश्वर से शुरु होता है। जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है उसी प्रकार योग विज्ञान भी सृष्टि के आरम्भ काल से प्रवाहमान है।

श्रीमद्भागवत गीता में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि सृष्टि के आरम्भ में उन्होंने विवस्वान (सूर्य) को सर्वप्रथम योग का उपदेश दिया था। विवस्वान ने अपने पुत्र मनु को अपने पुत्र इक्ष्वाकु को ऐसी परम्परा से योग के इस उपदेश का प्रचार–प्रसार राजाओं में फैला। इस परम्परा से योग की प्रचीनता सृष्टि के साथ शुरु होना लक्षित होती है।

भगवान शिव को योगीश्वर कहा जाता है, तथा आदिनाथ भगवान शिव को योगशास्त्र का उत्पत्तिकर्ता माना जाता हैं उन्होने सर्वप्रथम **आदिशक्ति पार्वतीजी** को प्रथम शिष्या के रुप में योग विज्ञान का ज्ञान दिया। वह ज्ञान **मत्स्येन्द्रनाथ** ने सुना और बाद में इसका प्रसार उनके शिष्यों को परम्परागत् (सिद्धों एवं नाथों की योग परम्परा के रुप में) प्राप्त होता गया ऐसा सन्दर्भ हठयोग की ज्योत्सना टीका से प्राप्त होता है।

योगीयाज्ञवाल्कय स्मृति के अनुसार योग विज्ञान के मूल उपदेशक **हिरण्यगर्भ** है तथा इनसे प्रचीन योग विज्ञान का कोई दूसरा जानकार नहीं है।

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।।

ऋग्वेद में भी हिरण्यगर्भ के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है कि सृष्टि के पहले हिरण्यगर्भ विद्यमान थे इन हिरण्यगर्भ भगवान् को **समष्टि बुद्धि** कहते है, इन्ही को योगी लोग महान् तथा विरचि और अज (अजन्मा) भी कहते हैं। इन्होनें ही सर्वप्रथम पृथ्वी तथा स्वर्ग को धारण किया। पंतजलि योग सूत्र पर **महर्षि वेदव्यासजी** ने भाष्य शुरु करने के पूर्व योग के उत्पत्तिकर्ता के रुप में **वासुकी** से प्रार्थना (स्तवन) की कि **''योग दो योगयुक्तः''**। यही पतंजलि उन्हीं हिरण्यगर्भ (वासुकी) के अवतार माने जाते है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि योग विज्ञान का प्रारंभिक विकास सृष्टि आरम्भ के साथ ही शुरु हो गया था। चूकिं भगवान शिव, विवस्वान, हिरण्यगर्भ अथवा वासुकी को **भारतीय मनीषा आप्त वचन** मानकर स्वीकार करती है। किन्तु अन्य या **आधुनिक वैज्ञानिक मनीषा** इन्हें ऐतिहासिक व्यक्तित्व नही मानती। फिर भी उपरोक्त उल्लेख योग विज्ञान की परम्परा अति प्रचीन है ऐसा संकेत अवश्य प्रदान कर देते है।

1.4.2 ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास

ऐतिहासिक एवं पुरात्तात्त्विक ज्ञान के आधार पर योग विज्ञान का विकास क्रमशः ज्ञात सभ्यताओं में सबसे प्रचीन सभ्यता सिन्धु घाटी की सभ्यता से शुरु होकर निम्नानुसार हुआ। ऐतिहासिक विकास क्रम को व्यवस्थित करने हेतु पुरातात्विक धरोहरों एवं प्राचीन साहित्य को आधार बनाया गया है। काल क्रमानुसार योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास निम्नलिखित प्रकार से है

(1) पूर्व वैदिक काल
(2) वैदिक काल
(3) उपनिषदों का काल
(4) महाकाव्य काल
(5) सूत्र काल
(6) स्मृति काल

(7) पौराणिक काल
(8) मध्य काल
(9) पूर्व–आधुनिक काल
(10 21वीं शताब्दी का प्रारंभ काल

(1) पूर्व वैदिक काल

वेदों के काल के पूर्व पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता हैं कि **सिन्धु घाटी** में एक सभ्यता थी जो एक विकसित सभ्यता थी यह सभ्यता मातृ शक्ति की पूजक थी। यही से **पशुपतिनाथ** के रुप में **पद्मासन** में बैठे योगी की मूर्ति प्राप्त हुई है। (चित्र क्र.–1) इस सभ्यता के ध्वंसावशेषों से ज्ञात होता है कि ईसवीं सन् से 3000 वर्ष पूर्व तथा उससे भी पहले भारतवर्ष में योग विज्ञान का प्रचार हो चुका था। पत्थर की प्राप्त मूर्तियाँ जिनका मस्तक, ग्रीवा और धड़ बिल्कुल सीधा है और जिनके अर्ध निमिलित नेत्र नासिका के अग्रभाग पर स्थिर है। योग विज्ञान के शास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे योगी की प्रतिमा है। जो वायु पुराण के पाशुपत योग का विवरण है। यह साक्ष्य कम से कम योग विज्ञान के इतिहास को ताम्रयुग में सिन्धु प्रदेश में आर्य परिपाटी के प्रसार तक अवश्य ले जाता है।

(2) वैदिक काल

वेद इस वसुन्धरा की सबसे प्राचीन उपलब्ध रचनाएँ है। निश्चित ही काल को लेकर विद्वानों में मत्तैक्य नहीं है। मैकसमूलर 1200 से 1000 ई. पू. प्राचीन मानते है। जैकोबी एवं बालगंगाधर तिलक ने 4500–2500 ई. पू. तथा विन्ट्रनिट्ज के अनुसार 2500 से 1500 ई. पू. के बीच इनका काल माना है। चूंकि वेदों की रचना बुद्ध और महावीर से पहले पूर्ण हो चुकी थी इस कारण किसी भी स्थिति में वेदों का काल 750 ई. पू. से पहले का ही सिद्ध होता है। **वेदों** को **श्रुति** भी इसीलिये कहते है कि ये परम्परा से श्रुति रूप में ही प्रचारित–प्रसारित हुये थे। वैदिक साहित्य में प्राणापानदि वायु, सत्यधर्म की महत्ता, ध्यान, आचार शुद्धि, ध्यानात्मक आसन की स्थिति आदि यौगिक तकनीकि व्यवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख आया है। जैसे :– यजुर्वेद (7:27) एवं (7:14), अथर्ववेद (11:4) अथर्ववेद (19:43:1) में **दीक्षा, तपस्** इन शब्दों का प्रयोग योग साधना के अर्थ में किया गया है। उपरोक्त विवेचना से ऐसा स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में भी योग साधना करने वाले योग विज्ञान के जानकार ऋषि, मुनि, योग साधक विद्यमान थे। परंतु एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में योग विज्ञान का विकास अभी भी नहीं हुआ था। योग विज्ञान का कुछ विकास ब्राम्हण ग्रंथों में भी देखने को मिलता है। शथपथ ब्राम्हण, एतरेय ब्राम्हण, कौशीतिक जैमनीय एवं गोपथ आदि में **प्राणविद्या** के बारे में विस्तार से वर्णन है। प्रणव विद्या का विकसित रूप आ चुका था प्रणव का अन्य नाम ऊँ है। ब्राम्हण ग्रंथ वेदों के कर्मकाण्ड भाग कहलाते है। जो अपने विभिन्न वेदों से जुड़े है इनमें शथपथ ब्रम्हण सबसे ज्यादा विस्तारित है।

(3) उपनिषदों का काल

वृहदारण्यकोपनिषद (1:5:3) एवं छांदोग्य उपनिषद् में (1:3:3) प्राण, अपान आदि पाँच वायुओं के महत्व का

वर्णन किया गया है। हृदय तथा उससे निकलने वाली नाड़ियों का वर्णन कठोपनिषद (2:3:16) तथा छांदोग्य उपनिषद (8:6:1) में पाया जाता है। हठयोग में सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझी जाने वाली **सुषुम्नानाड़ी** का अप्रत्यक्ष उल्लेख भी इन दोनों उपनिषदों में तथा तैतिरीय उपनिषद् (6:1) में मिलता है। कठोपनिषद में योग की सुस्पष्ट व्याख्या (2:3:11) की गयी है। श्वेताश्वतर उपनिषद में योगाग्निमय शरीर की तथा ध्यानयोग का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है। मुंडकोपनिषद (3:2:6) में **सन्यासयोग** शब्द का प्रयोग मिलता है। योग का आधारभूत विकास उपनिषदों में देखा जा सकता है। जैसे छन्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषद **''क्रियायोग''** का आधारभूत सिद्धांत बताते हैं। **श्वेताश्वतर उपनिषद** योग की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण उपनिषद है। इस उपनिषद में **योग अभ्यासों का** क्रमवार विवरण प्राप्त होता है तथा उनका शरीर क्रियात्मक प्रभाव का वर्णन भी प्राप्त होता है। जिसकी परम्परा बाद में **हठयोग** के ग्रंथों में प्राप्त होती है। एतरेय और तैतरीय उपनिषद में शरीर के विभिन्न कोषों का वर्णन मिलता है। इस प्रकार उपनिषद योग विज्ञान की आधार शिला कहे जा सकते है।

(4) महाकाव्य काल

दो प्रमुख भारतीय महाकाव्य महाभारत एवं रामायण विभिन्न प्रकार की यौगिक क्रियाओं एवं साधनाओं से भरे पड़े है। योग पद्धति के विभिन्न रूप **रामायण काल** में बहुत प्रचलित थे। **महाभारत** महत्वपूर्ण योग विज्ञान का स्त्रोत साहित्य है, प्रसिद्ध श्रीमद्भगवत् गीता का योग निरूपण इसी ग्रंथ का एक भाग है। गीता **योग युक्त व्यक्ति** के गुणों का वर्णन करती है तथा **ज्ञान भक्ति एवं कर्म** के मार्गों पर प्रकाश डालती है। गीता योग के विभिन्न अभ्यासों एवं तकनीकों का एक विशिष्ट संश्लेषण है। प्राचीन समय से ही गीता पर अनेक भाष्य लिखे गये तथा व्याख्यायें की गई तथा वर्तमान में भी विश्व की सभी भाषाओं में इसके अनुवाद हो रहे है।

(5) सूत्र काल

महर्षि पतंजलि द्वारा संकलित योग सूत्र योग का सबसे प्राचीन व्यवस्थित ग्रंथ सूत्र काल के साहित्य के रूप में हमें उपलब्ध होता है। इसमें 195 सूत्र जो 4 अध्यायों में विभक्त है प्राप्त होते है। यह सूत्र ग्रंथ पूर्व की एवं समसामयिक परम्पराओं का आधार ग्रंथ है साथ ही **परिवर्तित** चिंतकों और योग साधकों को प्रभावित करता रहा है। योग सूत्र के ऊपर कई भाष्य एवं टीकायें लिखी गई है जो क्रमशः उनके समयानुकूल तकनीकों एवं अवधारणाओं से प्रभावित है।

योग सूत्र पर प्रथम भाष्य महर्षि वेदव्यास ने **''व्यास भाष्य''** नाम से किया। बिना इस भाष्य के योग सूत्र सदैव अपने वास्तविक अर्थ से अछूता ही रहता। व्यासभाष्य पर अनेक टीकायें जिनमें विज्ञान भिक्षु, रचित योग वार्तिक, वाचस्पति मिश्र कृत – व्यासभाष्य व्याख्या, भोज द्वारा लिखित राजमार्तण्ड, रामानंद लिखित– मणिप्रभा, रामानुजकृत योगसूत्र भाष्य, राधवानन्द कृत पातंजल रहस्य, पं. बलदेव मिश्र कृत योगप्रदीपिका, ब्रम्हानन्द कृत ज्योत्सना टीका आदि सैकडों टीकायें लिखी जा चुकी है।

महर्षि पतंजलि

यही काल दर्शनों के उद्‌भव का भी काल रहा है। पांतजल योग सूत्र के पूर्व बौद्धों का योग के विकास एवं साधना में विशिष्ट प्रभाव रहा है। बुद्ध ने स्वयं योग की शिक्षा **योग गुरू अरम कलाम** और **उद्‌क रामपुत्र** से प्राप्त की। पतंजलि के योग सूत्र एवं बौद्धों के आरम्भिक ग्रंथों की अवधारणाओं में बड़ी स्पष्ट समानता प्राप्त होती है। बौद्धों के आरंभिक ग्रंथों में ध्यान के चार अंग योग साधना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। महर्षि पंतजलि ने भी योग सूत्र में ऐसी ही योजना की व्याख्या की है। जिसमें चार प्रकार के ब्रम्ह विहारों को बताया गया है, **मैत्री, करूणा, मुदिता** और **उपेक्षा।** दोनों ही सिद्धान्त समाधि एवं निर्वाण की अवधारणा में भी समानता रखते है। तथा आठ योगांगों में भी समरूता प्रदर्शित होती। ऐसा लगता है जैसे दोनों समान स्रोत से आयी विचारधारायें है। पंतजलि काल के बाद बौद्ध अनेक शाखाओं में विभक्त हो गयें।

जैन दर्शन के संस्थापक महावीर स्वामी बौद्धों के समकालीन ही थे। महावीर 24 वें तीर्थकर के रूप में गिने जाते है तथा महान् योगाभ्यासी योगी के रूप में जाने जाते है। जैन दर्शन का **उपाययोग** के रूप में सम्मयक कर्म, सम्मक् वाणी एवं सम्यक् ज्ञान को प्राथमिकता देती है और साधना के तीन अंगों (1) ज्ञान योग (2) इच्छायोग (3) क्रिया योग बतलाते है। मुक्ति के लिए जैनियों की शिक्षा में सम्यक् दर्शन सम्यक् चरित्र का विधान हैं या पूर्ण मुक्ति इन्हीं से संभव है। यमों का जो वर्णन पंतजलि योग सूत्र में प्राप्त होता है वहीं जैन पंथ के भी हैं। हेमचन्द्र द्वारा लिखित एवं व्याख्यायित योग ग्रंथों में मुख्य है। योग बिन्दु, प्रवचनसार, योगदृष्टि समुच्चय, योगसार, परमात्मा, तत्ववृताधिगम् सूत्र आचार्यडंग, उत्तरध्यान आदि।

(6) स्मृति काल

स्मृतियों का काल पतंजलि के काल से शुरू होता है हालांकि कुछ स्मृतियाँ 500 B.C. के आसपास सम्पादित हुई है तथा 1000 A.D. तक लिखी गई है। **स्मृति साहित्य** के इस लंबे काल में हमें विश्वास, पूजा और रीति रिवाजों में अनेक परिवर्तन प्राप्त होते है। स्मृतियों में योग नित्य कर्मों में स्थान रखता है। अभी तक सत्ताइस स्मृति ग्रंथ प्राप्त है तथा प्रकाशित हुये है। इनमें याज्ञवाल्कय स्मृति, मुन स्मृति, दक्षस्मृति प्रमुख है।

(7) पौराणिक काल

पौराणिक काल में **योग विज्ञान** का **विकास** प्रथम ईसवीं सदी के आसपास से शुरू होता है। परम्परागत पुराणों में 18 पुराणों को लिया जाता है ये निम्नलिखित है

(1) ब्रम्ह, (2) पद्य, (3) विष्णु, (4) वायु, (5) भागवत्, (6) नारदीय, (7) मार्कण्डेय, (8) अग्नि, (9) भाविष्य, (10) ब्रम्हत वैवर्त, (12) लिंग, (13) वाराह, (14) वामन, (15) कूर्म, (16) मत्स, (17) गरूड़ और (18) ब्रम्हानंद पुराण इनमें से अधिकांश पुराण योग अंगों को बताते है तथा योगचर्या की विवेचना करते है। इन अठारह पुराणों के 18 उपपुराण भी है इनकी संख्या सैकड़ों भी हो सकती है लेकिन केवल 15 ही मुद्रित प्राप्त होते है। ये योग साधना पर जोर देते है तथा योगांगों की विविध व्याख्यायें प्रदान करते है।

(8) मध्यकाल

मध्यकाल को योग विज्ञान के विकास में हम निम्न चार धाराओं में पृथक–पृथक देख सकते है। ये चार धारायें निम्न हैं

(1) तन्त्र धारा
(2) नाथ धारा
(3) भक्ति धारा
(4) शंकराचार्य धारा

(1) तन्त्र धारा

तंत्र योग साधना का बहुत बृहत साहित्य प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों रूपों में मिलता है। तंत्र सामान्यतः शक्ति उपासना, मुद्राओं, मंत्रों, मण्डलों तथा पंचमकार इनमें भी दक्षिणमार्गों वाममार्गों और जादूई प्रयोगों के द्वारा अति प्राकृतिक शक्तियों को प्राप्त करना है। यह कह सकना बड़ा शोध का विषय है कि कौन सा तंत्र पहले प्रचलित हुआ। इन तंत्रों में अनेक विषयों को सम्मिलित किया गया है। सातवीं से बारहवीं शताब्दी का काल सर्वाधिक तंत्र ग्रंथों के

प्रणयन का काल रहा, इनमें हिन्दू और बौद्ध दोनों सम्मिलित है। योग साधना का प्रयोग तंत्रिक आनंद प्राप्ति हेतु करते हैं तथा इनकी साधना के तीन स्तर है पशुभाव, वीरभाव, एवं दिव्यभाव, ये तीनों भाव साधकों की साधना के स्तर पर निर्भर करते है। अन्तिम स्तर पर पहुंचते–पहुंचते तांत्रिक इन्द्रियों के स्तर से भी ऊपर उठ जाता है।

(2) नाथ धारा

तांत्रिक धारा का विकास राजयोग और बौद्धों की सहजयान शाखा से शुरू होता है तथा राजयोग पतंजलि के योग से अत्याधिक भ्रमित करता है। राजयोग की पृष्ठभूमि में हठयोग रहा है तथा यह नथों की साधना से बहुत लोकप्रिय बन गया। हठयोग साधना का मूल आधार तांत्रिक सिद्धान्त ही रहे है। उच्च आत्मिक अनुभवों के लिए नाथ योगियों द्वारा शरीर का प्रयोग एक साधन के रूप में माना गया। यही योग आज संपूर्ण विश्व में सर्वाधिक लोकप्रिय हो रहा है। हठयोग के प्रमुख ग्रंथों में सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, गोरक्षशतक, हठप्रदीपिका, धेरण्ड संहिता, शिव संहिता, प्रमुख हैं। कुछ प्रमुख ग्रंथ जो पाण्डुलिपियों में प्राप्त होते है जैसे :– हठरत्नावली, हठसंकट चन्द्रिका, योग चिन्तामणि आदि इस धारा के प्रमुख साहित्य है।

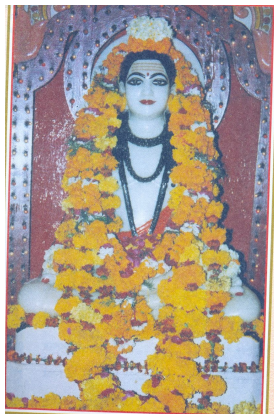

गुरू गोरक्षनाथ

(3) भक्ति धारा

योग विज्ञान ने भक्ति साहित्य को भी अत्यंत प्रभावित किया। भक्ति संतों ने योगसाधना द्वारा गूढ़ रहस्यों को खोजा एवं उन्हीं साधनाओं के द्वारा भक्ति की ओर प्रेरित भी किया। भागवत पुराण वैष्णव संम्प्रदाय की बाइबिल की तरह अपनाई जाती है। प्राचीन काल से ही शाण्डिल्य सूत्र और नारद भक्ति सूत्र व्यावस्थित रूप में भक्ति को एक अन्य स्वरूप में प्रस्तुत करते रहे हैं। इस प्रकार भक्ति धारा योग विज्ञान की आधारभूमि पर ही खड़ी प्रतीत होती है।

भक्ति का उपदेश देते महर्षि नारद

(4) शंकराचार्य धारा

आदिशंकराचार्य द्वारा भारतीय संस्कृति की एकता और अखण्डता को अक्षुण बनाये रखने हेतु संपूर्ण भारत वर्ष को चार भागों क्रमशः उत्तर **(ज्योतिर्मठ)** दक्षिण **(श्रृगेंरीमठ)** पूर्व **(गोवर्धनमठ)** पश्चिम **(द्वारकाशारदा मठ)** में बाँटकर सनातन धर्म की पुनः स्थापना कर योग पद्धति से जीवन जीने एवं जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करने का संदेश दिया गया। आदिशंकराचार्य ने योगाचार्य भगवत्पूज्यपादाचार्य से योग साधना की दीक्षा ली एवं अपने योगबल से मात्र 32 वर्ष की आयु में संपूर्ण भारतीय समाज को अंधकार में जाने से रोककर अपने अद्वैत वेदांत के सिद्धांत से पूरे विश्व को बौद्धिक चुनौती प्रदान की। उनकी यह परम्परा सतत् प्रवाहमान है एवं योग साधना के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित कर रही है इस धारा के वर्तमान में चार शंकराचार्यों में – 1. शारदामठ (द्वारिका) एवं, 2. ज्योर्तिमठ (बदरिकाश्रम) के शंकराचार्य **अन्नतश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती महाराज** हैं। इन्होंने पिछले करीब दो सौ वर्षों की विलुप्त धारा को पुनः प्रवाहित किया एवं ये साक्षात् योगीशवर के अवतार है। 3. गोवर्धन मठ (जगन्नाथपुरी) के शंकराचार्य **श्री निश्चलानन्द जी** है। तथा 4. श्रृंगेरीमठ (रामेश्वरम्) के शंकराचार्य **श्री भारतीतीर्थ जी महराज** है। इन चारों मठों के ब्रम्ह वाकय क्रमशः 1. **तत्वमसि** (सामवेद), 2. **अयमात्मा ब्रम्ह** (अथर्ववेद), 3. **अहं ब्रम्हास्मि** (यजुर्वेद) एवं 4. **प्रज्ञानं ब्रम्ह** (ऋग्वेद) है।

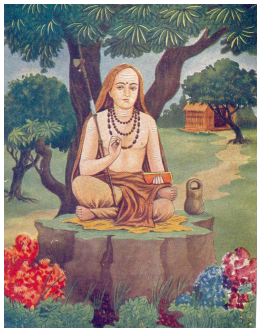

आदि शंकराचार्य

(5) पूर्व आधुनिक काल

भक्ति काल के उपरांत योग विज्ञान को विकास एवं लोकप्रियता दिलाने में स्वामी श्रद्धानंद (आर्यसमाज) राजाराममोहन राय (ब्रम्हसमाज) स्वामी विवेकानंद रामकृष्ण मिशन का बड़ा योगदान रहा है। महर्षि रमन एवं परमहंस योगानंद ने लगातार योग विज्ञान का प्रचार–प्रसार भारत के बाहर कर के लोकप्रियता बढ़ाई। रमन् महर्षि श्री अरविंद स्वामी शिवानंद ने भी इसी काल में योग विज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किया। जहाँ **विवेकानंद** ने राजयोग की वैज्ञानिकता पर कार्य किया वहीं **शिवानंद** ने योग सन्यास परम्परा पर कार्य किया तथा इसी दौरान **स्वामी कुवल्यानंद** जी ने योग की विधियों का वैज्ञानिक उपकरणों एवं तकनीकों से सांमजस्य स्थापित करते हुए प्रयोगों का नया क्षेत्र खोला एवं दैनिक जीवन में योग विज्ञान की उपादेयता सिद्ध करने के प्रयास किये। इसी क्रम में **गीता प्रेस गोरखपुर** ने योग साहित्य द्वारा जन–जन तक योग ज्ञान फैलाने में महती भूमिका का निर्वहन किया।

10. 21वीं शताब्दी का प्रारंभ काल

योग साधना का सामुदायिक स्वरूप 20वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में विशेष धार्मिक–सामाजिक आंदोलनों के विशेष अर्थों में प्रारंभ हुये इनमें :–

(1) **आचार्य श्रीराम शर्मा** ने गायत्री परिवार के रूप में समाज का विशिष्ट कार्य प्रारंभ किया जिसमें योग के विविध स्वरूप समाहित है। शांति कुंज हरिद्धार इसका केन्द्र है।

(2) **महर्षि महेश योगी** ने भावातीत ध्यान की संकल्पना के साथ सम्पूर्ण विश्व में ध्यान की नई पद्धति एवं भारतीय आस्था के केन्द्र वेदों में सम्पूर्ण ज्ञान का सार खोजा। इन्होंने विश्वभर में चेतना विज्ञान एवं वेद अध्ययन केन्द्रों की स्थापना की। भावातीत ध्यान पर विश्वभर में कई वैज्ञानिक शोधकार्य हुऐ हैं। इनकी दो पुस्तके :– 1) साईंस ऑफ बींग एण्डं आर्ट ऑफ लिवींग (Science of Being and Art of Living) तथा 2)कोमेंट्री ऑन श्रीमद्भगवद गीता (Comentry on Shrimad Bhagvad Geeta) बड़ी प्रसिद्ध हैं।

(3) **अर्न्तराष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत** संघ के संस्थापक भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने अमेरिका से भक्ति योग का शंखनाद किया। तथा सम्पूर्ण विश्व में 108 श्रीकृष्ण के भव्य मंदिर बनवायें।

वर्तमान में योग विज्ञान ने एक जन आंदोलन का रूप ले लिया है केन्द्र एवं राज्य सरकारें इसमें अपना पूर्ण योगदान कर रही है। स्वास्थ्य मंत्रालय ने योग विज्ञान के प्रचार–प्रसार हेतु **योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान संस्थान** के रूप में एक केन्द्रीय संस्थान बनाया है जिसका मुख्यालय दिल्ली में है जो योग विज्ञान में शोध एवं प्रचार हेतु अनुदान भी उपलब्ध करवाता है। देश के अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा योग शिक्षा के स्नातक, स्नातकोत्तर, पत्रोपाधि एवं शोध कार्यक्रम प्रारंभ किये गये है। इनमें सर्वप्रथम शुरूआत सन् 1959 में डा. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर में योग विज्ञान विभाग की स्थापना से हुई। आज अनेक राज्यों में राज्य शासन के राज्य स्तरीय योग केन्द्र जनस्वास्थ्य एवं शिक्षा हेतु गठित है एवं कार्य कर रहे हैं। 21वीं शताब्दी में योग विज्ञान **दैनिक चर्या के विज्ञान** के रूप जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रवेश कर रहा है, योग विज्ञान के विकास में ये **शुभ लक्षण** है।

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (विश्व का प्रथम योग विभाग)

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3 योग विज्ञान के परम्परानुसार विकास को स्पष्ट कीजिये ?

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

4 वैदिक काल में योग विज्ञान के विकास को स्पष्ट कीजिये ?

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

1.5 इकाई 3 योग विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र

1.5.1 योग विज्ञान की अवधारणा

जीवन के जो भी धर्म है, उन सबके साध्य हेतु शरीर ही एक मात्र साधन है। साधन जितना सम्यक् होगा साध्य उतना ही उन्नत (उच्च) होगा। प्राचीन काल से आज तक मनुष्य ने जो कुछ भी भौतिक प्रगति की है उन सब में इस शरीर को ही सुख प्रदान करने का उद्देश्य निहित है। भारतीय वाड्गमय विशेषकर वेद (संहिताएँ, ब्राम्हण, आरण्यक एवं उपनिषद्) एवं परिवर्तों काल में षड्दर्शन, शरीर रूपी साधन से सत्यानुसंण्धान, तत्वानुसंधान, ब्रम्हानुसंधान, आत्मानुसंधान या स्वास्थ्यानुसंधान रूपी साध्य को प्राप्त करने का उद्योग प्रस्तुत करते रहे हैं। भारतीय चिंतकों

ने तो शरीर को सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड की सूक्ष्म प्रतिकृति की संज्ञा दी है। इस सच्चिदानंद (सत्यं, शिवम्, सुन्दरम्) **ब्रम्ह** से ही विश्व के सब प्राणियों का जन्म **आनन्द** में हुआ है और वह आनन्द में ही जीवन जीता है तथा आनन्द में ही उसका लय हो जाता है। ऐसा **तैतरीय उपनिषद** का मत है और यदि ऐसा नहीं हो रहा है तो शरीर को स्वस्थ रखने में सम्यक्ता नहीं है। और तब स्वास्थ्यानुसंधान के रूप में योगानुसंधान की आवश्यकता होगी।

वर्तमान में भी सम्यक् स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए ''विश्व स्वास्थ्य संगठन'' स्वास्थ्य को केवल रोग और अपंगता का अभाव भर नहीं मानता बल्कि व्यक्ति की संपूर्ण **भौतिक, मानसिक** एवं **सामाजिक** सम्पन्नता की स्थिति को स्वास्थ्य से जोड़कर देखता है। जे. एफ. विलियम स्वास्थ्य को जीवन का वह गुण मानते है जो मनुष्य को अधिकतम जीवित रहने एवं श्रेष्ठतम सेवा करने योग्य बनाता है। आयुर्वेद स्वस्थ मनुष्य हेतु एक सर्वांग परिभाषा प्रस्तुत करता है जिसके तीनों दोष (वात, पित्त, कफ) सम हों जिसकी जठराग्नि (पाचन क्रिया) सम हो, जिसकी धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) की क्रिया सम अर्थात् क्षय और वृद्धि से रहित हो जिसके मलों (स्वेद, मूत्र, पुरीष) की क्रिया सम हो, जिसकी आत्मा, दशों, इन्द्रियाँ (पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ) और मन प्रसन्न (निर्मल अविकारी) हों वह व्यक्ति ''स्वस्थ'' कहलाता है। अर्थात् शरीर, मन, आत्मा तीनों पूर्ण रूप से विकार रहित हो तो तब उसे सम्यक् स्वास्थ्य कहा जाता है।

मनुष्य जन्म से पूर्व, जन्म की सूक्ष्मता एवं जन्म के बाद वृद्धि में जो भी कर्म करता है वह सब योग ही है। अर्थात् जड़ चेतन के बीच जो भी परिवर्तन हो रहा है। वह सब योग का ही प्रयोजन है, **क्रमबद्ध पर्याय** है। इस क्रमबद्ध पर्याय से परे हटना सम्यक् रूप से स्वा की स्थिति से परे हटना ही अस्वास्थ्य है। स्वा में स्थित रहने का पूरा विज्ञान योग दर्शन स्पष्ट करता है। स्वा में अर्थात् समाधि में स्थित होने के लिए क्रिया योग की आवश्यकता होती है। क्रिया योग के तीन रूप है **तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान** इन्हें स्वास्थ्य प्राप्त करने के नियमों शौच एवं संतोष के साथ रखा गया है। शरीर को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (निरोग रखना) **तप** है, मन को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (मन का निग्रह या नियंत्रण) स्वाध्याय (आत्म ज्ञान) है, तथा आत्मा को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना आत्मा को तम के आवरण से रहित करना **ईश्वर प्राणिधान** है। ये तीनों क्रिया योग के रूप में अभ्यास एवं वैराग्य की सिद्धि करवाते है। अभ्यास से शरीर एवं वैराग्य ही मन की शुद्धि होती है तब व्यक्ति समाधि की ओर अग्रसर होने की योग्यता अर्जित कर पाता है।

समाधि की ओर अग्रसर होने हेतु योगदर्शन वर्णित व्रतों का नियम पूर्वक (मन, वचन, कर्म) से पालन करना होता है, व्रत जो जाति, देश, काल और समय की सीमा से रहित समस्त अवस्थाओं में पालन करने योग्य है इनके पाँच प्रकार के क्षेत्र हैं, इन व्रतों को महाव्रत या यम कहा जाता है। इनके द्वारा स्वयं पर नियंत्रण किया जाता है, इनका अभ्यास मानसिक स्तर पर होता है जो शुद्ध सात्विक मनोवृत्ति निर्माण करते हैं। उनके भेद हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह। इन व्रतों को नियमों से पालन करना चाहिए। नियमों के भेद है, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान। ये नियम विशुद्ध रूप से क्रियात्मक है इन नियमों के पालन से शरीर और इन्द्रियों को मन नियंत्रित करने की योग्यता अर्जित कर लेता है। मन के नियंत्रण के चित्त शांत होता है। चित्त के शांत होने से वृत्तियॉ उठना बंद हो जाती है। यही **योगस्य** चित्त, वृत्ति, निरोधः है।

1.5.2 स्वास्थ्य प्रबंधन और आष्टांगिक मार्ग

सम्यक् स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शुद्धि का विधान योग दर्शन में महर्षि पंतजलि आठ सोपानों में करने का उपदेश करते हैं। ये आठ सोपान, **यम–नियम, आसन–प्राणायाम,** प्रत्याहार–धारणा, ध्यान एवं समाधि है। यमों एवं नियमों के पालन करने में, वितर्क, बाधा (व्यवधान) उत्पन्न करते हैं, इस हेतु उनसे बचना चाहिये। वितर्कों से बचकर यम नियमों का पालन करने पर शरीर को स्थिर एवं सुखपूर्वक स्थित रखने में संसारिक द्वन्दों के प्रभाव नहीं व्यापते। द्वन्दहीन शरीर में प्राणों का संचालन अपनी इच्छा से किया जा सकता हैं। प्राणों का संचालन तीन भेदों में क्रमशः अन्तः, बाह्य और स्तम्भ रूप से देश, काल एवं संख्या से अपने शरीरानुकूल निर्धारित करना होता है और जब प्राण अपने इच्छा से (स्वाभाविक रूप से) गति करता है तो बुद्धि स्थिर हो जाती है। स्थिर बुद्धि ही

विवेक ज्ञान है। बुद्धि से स्थिर (प्रकाशित) होने पर मन को निग्रह (वश) में करने की योग्यता आ जाती है और जब मन को अपने वश में करने की क्षमता (प्रत्याहार) आ जाती है तो इन्द्रियों का वश में होना (बुद्धि का स्थिर होना) निश्चित हो जाता है। इन्द्रियों को विषयों से स्थिर बुद्धि के अनुसार संबंध रखने की योग्यता धारणा जब हो जाती है तब अहंकार समाप्त हो चित्त (मन, बुद्धि, अहंकार) शांत होने लगता है। शांत चित्त (धारणा, ध्यान, समाधि) को किसी विषय में एकाग्र किया जाना संयम कहलाता है। संयम से भूत एवं भविष्य सब दृष्ट हो जाता है तथा संयम से अनेक सिद्धियाँ (अलौकिक सामर्थ्य) प्राप्त हो जाती है। संयम से एकाग्र हुआ चित्त **दृष्टा** एवं **दृश्य** से रंगा हुआ समस्त अर्थों वाला होता है। ऐसा चित्त ही स्वरूप को प्राप्त कराता है, इस चित्त को स्थिर करने के उपाय यौगिक जीवन शैली द्वारा संभव है। यह शैली संसार में सर्वाधिक संख्या में उपस्थित मध्यम अधिकारियों के लिए एक मात्र विकल्प है। इसके अन्तर्गत श्रद्धापूर्वक, योग साधना पद्धति के सोपानों को पूर्ण करना होता है। इस हेतु मन, वचन, कर्म से यमों का नियमों के द्वारा पालन करना चाहिए। शरीर का षट्कर्मों (नेती, धोती, बस्ती, कुजंर, नौली एवं त्राटक साथ ही कपालभाति, धौंकनी, बाधी और शंख प्रक्षालन) की क्रियाओं को करते हुए, शरीर के प्राकृतिक विकास हेतु योग आसनों का अभ्यास करना चाहिए। आसनों द्वारा शरीर के सम्यक् विकास में (शरीर को पूर्णतः प्राणों युक्त करने में) प्राणायाम का विधान भेद एवं अंगों सहित करने का विवरण योगदर्शन प्रस्तुत कर इसे स्थिर करने हेतु मन के निग्रह हेतु प्रत्याहार की विधि से मन को धारण करने का निर्देश करता है। मन को धारण करने के आधार के अनुसार ही आधार ध्यान में पर्णित होने लगता है और ध्यान की गहराई के अनुरूप ही सम्यक् स्वास्थ्य (समाधि) घटित हो जाता है।

योग दर्शन अधिकारी भेद से समस्त मनुष्यों को तीन प्रकारों उत्तम, मध्यम एवं निम्न (हीन) में वर्गीकृत करता है तथा उत्तम अधिकारियों को राजयोग द्वारा आत्मानुसंधान या कैवल्य प्राप्ति का निर्देश करता है। मध्यम अधिकारियों को ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदि के द्वारा मनोनिग्रह कर आत्मज्ञान की प्रेरणा देता है तथा निम्न (हीन) अधि ाकारियों को शरीर शुद्धि की ओर प्रवृत कर हठयोग की सहायता का विधान करता है। जड़ शरीर की सम्यक् शुद्धि होने के बाद चित्त की (मन, बुद्धि, अहंकार) पुरूष के समान शुद्धि होने पर सम्यक् स्वास्थ्य (मोक्ष, निर्वाण, परमपद, कैवल्य मुक्ति) प्राप्त किया जा सकता है। यही योग का अनुशासन (प्रबंधन) है और यह अनुशासन ही कैवल्य की ओर प्रवृत (प्रेरित) करता है।

1.5.3 योग विज्ञान के क्षेत्र

विज्ञान की अंधाधुन्ध प्रगति और मानव व्यक्तित्व के वैश्वीकरण की स्थिति ने मानव जीवन की **निजता एवं सरलता** को मानव जीवन से छीन लिया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा के बिना सहज जीवन रह ही नहीं गया है। ढ़ाई साल का बालक नर्सरी शिक्षा में 'पाँच किलो' का स्कूल बैग लिये बगैर अपना अस्तित्व ही नहीं बना सकता है। अस्सी वर्ष की वृद्ध काया बिजली और कूकिंग गैस जैसी मूलभूत चीजों की लाईन में धक्के खाये बिना अपना जीवन यापन कर ही नहीं सकता ऐसे परिवेश में शारीरिक एवं मानसिक शांति के लिए योग विज्ञान ने हर क्षेत्र में अपनी भूमिका सिद्ध कर दी है।

कुछ प्रमुख क्षेत्र जहाँ योग की भूमिका स्वीकार कर ली गई है। जो निम्नलिखित है –

1. शिक्षण संस्थानों के सभी स्तरों एवं क्षेत्रों में
2. चिकित्सा विशेषकर आयुर्वेदिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा सिद्ध एवं यूनानी चिकित्सा के क्षेत्र में
3. खेल दक्षता बढ़ाने के क्षेत्र में
4. औद्योगिक कर्मचारियों की दक्षता बढ़ाने में
5. मनोचिकित्सा के क्षेत्र में
6. शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में
7. राजनीतिक व्यस्तता के समायोजन में
8. अत्मानुशासन, धर्मानुशासन एवं वैशविकशांति के क्षेत्र में

9. व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास एवं स्वास्थ्य प्रबंधन में
10. शारीरिक सौन्दर्य विकास के क्षेत्र में
11. सामुदायिक स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5 योग विज्ञान की अवधारणा को संक्षिप्त में समझाइए ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

6 स्वास्थ्य प्रबंधन में अष्टांगिक मार्ग पर प्रकाश डालिए ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

1.6 सारांश

इस खण्ड के अध्ययन के उपरांत आपने देखा कि योग विज्ञान की संकल्पना क्या है। योग विज्ञान या पद्धति में हम मानवीय आचार व्यवहार का प्रबंधन देखते है। योग विज्ञान के आधारभूत क्षेत्रों में समस्त संस्कृतियों एवं धर्मों का निचोड़ हमें प्राप्त हो जाता है। कर्तव्य की नई परिभाषा प्राप्त होती है। योग विज्ञान के इतिहास के अध्ययन में हमें भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता में एक तत्व **योग विद्या** का ज्ञान होना भी प्रकाश में आया। योग विज्ञान की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में आपने शरीर को निर्मित करने वाले तत्वों का ज्ञान प्राप्त किया साथ ही उपनिषदों में वर्णित शरीर के कोशों का विभाजन का भी ज्ञान आपको हुआ।

इस खण्ड में आपने योग विज्ञान के भारतीय दृष्टिकोण से परम्परागत् विकास के साथ ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास का भी ज्ञानार्जन किया। इस प्रथम खण्ड में आपको योग विज्ञान की अवधारणा एवं योग विज्ञान के क्षेत्रों का परिचय भी कराया गया। इस प्रकार आप अब योग विज्ञान की वास्तविक धारणा समझने के स्तर पर आ गये है। इस खण्ड के अध्ययन के बाद आपको **यमों** के अगों, **नियमों, अष्टांगमार्ग,** के आठ अंगों, तथा सांख्य दृष्टि से सृष्टि क्रम तालिका को कंठस्थ याद कर लेना चाहिये। साथ ही यम के अंगों एवं नियम के अंगों को **दैनिक जीवन में स्वतः आचरण में लाने का संकल्प** करना चाहिये। योग विज्ञान केवल **सैद्धांतिक** विज्ञान नहीं है। यह एक **प्रायोगिक विज्ञान** है तथा इसकी प्रयोगशाला अन्यत्र बाहर नहीं स्थित होती वरन् **प्रत्येक मनुष्य योग विज्ञान की एक प्रयोगशाला है** जिसका अस्तित्व मोक्ष प्राप्त करने पर ही समाप्त होता है। अतः आप इस पाठ्य सामग्री के साथ ही अपनी अन्तः यात्रा हेतु भी तैयारी शुरू कर देवें। इस हेतु आपको **प्रातः उठने** से लेकर **सायं विश्राम** तक एक उद्देश्य परक जीवन शैली की **समय सारणी** बना लेना चाहिये। सत्याचरण, स्वल्पाहार, स्वालंबन, परोपकार, सेवा, साधना, स्वाध्याय सत्संग के प्रयोग आप में विवेक ज्ञान को उत्पन्न करेंगे। यदि आप यह महसूस करते है कि आप समय सारणी बनाने में या अन्य किन्हीं बिन्दुओं पर अपने आपको अक्षम पा रहे हो तो **परामर्श कक्षा एवं सम्पर्क कक्षा** में इसका निराकरण कर सकते है। इसके बावजूद भी आपको कोई कठिनाई हो तो **पाठ्यक्रम दर्शिका** में दिये पत्ते पर हमसे सम्पर्क करें हम आपकी त्वरित मदद करेंगे।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से यम क्षेत्र पर प्रकाश डालिये?

उ. योग विज्ञान के दो आधारभूत क्षेत्र है।

(1) यम क्षेत्र

(2) नियम क्षेत्र।

(1) यम क्षेत्र :– राजयोग की प्राप्ति हेतु यम क्षेत्र की भी आवश्यकता होती है। महर्षि पतंजलि के अनुसार

यम क्षेत्र के पाँच उपक्षेत्र है (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रम्हचर्य और (5) अपरिग्रह।

स्वामी चरणदासजी ने यम क्षेत्र को और विस्तृत किया जो

निम्नानुसार है

(1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रम्हचर्य (5) क्षमा
(6) दया (7) धीरता (8) नम्रता (9) प्रमित भोजन और
(10) शुचिता

यम धातु से बने इस शब्द का अर्थ है नियन्त्रण करना। उपरोक्त वर्णित यमों द्वारा साधक अपने उपर नियन्त्रण प्राप्त करता है। मन, वचन, एवं कर्म द्वारा इन यमों का पालन स्वयं के साथ समाज के लिए भी अत्यंत लाभदायक है। इनका पालन जब प्रत्येक स्थिति, समय एवं काल में अनिवार्य रूप से किया जाता है तो इन्हें महाव्रत कहा जाता है।

प्र. 2 योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से नियम क्षेत्र पर प्रकाश डालिये?

उ. योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से दूसरा क्षेत्र नियम क्षेत्र कहलाता है। मनुष्य के लिए कर्म करने के आदर्श सिद्धांत नियम के क्षेत्र के अर्न्तगत आते है। महर्षि पतंजलि के अनुसार नियम क्षेत्र के भी पाँच उप क्षेत्र है –

(1) शौच (बाह्य एवं अभ्यन्तर) (2) संतोष (3) तप (4) स्वाध्याय
(5) ईश्वर प्रणिधान।

स्वामी चरणदासजी ने नियम क्षेत्र को और विस्तृत किया जो निम्नानुसार है –

(1) तप (2) संतोष (3) आस्तिकता (4) दान
(5) ईश्वर पूजन (6) सिद्धांत श्रवण (7) लज्जा (8) बुद्धि
(9) तप (10) होम।

ये क्षेत्र विशुद्ध रूप से क्रियात्मक होते है। इनके द्वारा प्रमुख रूप से शरीर की शुद्धि एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण किया जाता है। नियम मुख्यतः शारीरिक अभ्यास है गौण रूप में मानसिक अभ्यास इनके अभ्यास से साधक को व्यक्तिगत तौर पर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त होता है। इनका महत्व अत्याधिक है अभ्यास एवं वैराग्य की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले क्रियायोग के तीन क्षेत्रों में से दो क्षेत्र तप एवं स्वाध्याय इसी नियम क्षेत्र के अर्न्तगत ही है। अतः मन वचन एवं कर्म से इन क्षेत्रों का पालन योग विज्ञान में प्रवेश हेतु आवश्यक है।

प्र. 3 योग विज्ञान के परम्परानुसार विकास को स्पष्ट कीजिये?

उ. भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उद्‌गम ईश्वर से शुरू होता है, जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है उसी प्रकार योग विज्ञान भी सृष्टि के आरम्भ काल से ही प्रवाहमान है ऐसा माना जाता है।

एक परम्परानुसार श्रीमद्‌भागवत गीता में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि सृष्टि के आरम्भ में मैनें विवस्वान (सूर्य) को सर्वप्रथम योग का उपदेश दिया था। विवस्वान ने अपने पुत्र मनु, मनु ने अपने पुत्र इस्वाकु को ऐसी परम्परा क्रमशः चलती आई है।

दूसरी परम्परनुसार भगवान शिव को योगीश्वर कहा जाता है तथा आदिनाथ भगवान शिव को योगशास्त्र का उत्पत्तिकर्ता माना जाता है। उन्होंने ही सर्वप्रथम आदिशक्ति पार्वती जी को प्रथम शिष्या के रूप में योग विज्ञान का ज्ञान दिया वह ज्ञान **मत्स्येन्द्रनाथ** ने सुना और बाद में इसका प्रसार उनके शिष्यों की श्रृंखला में होता चला आ रहा है। ऐसा सन्दर्भ हठयोग की ज्योत्सना टीका से प्राप्त होता है। इस प्रकार योग विज्ञान के परम्परानुसार और भी प्रर्वतक प्राप्त होते है जैसे हिरण्यगर्भ इत्यादि।

प्र. 4 वैदिक काल में योग विज्ञान के विकास को स्पष्ट कीजिये?

उ. वैदिक साहित्य इस वसुन्धरा की सबसे प्राचीन उपलब्ध रचनाएँ है। अनेक विद्वानों ने वैदिक काल की प्राचीनता पर अपने अपने मत्त व्यक्त कीये है। सभी एक तथ्य पर सहमत है कि वेदों का काल कम से कम 750 ई.पू. के पहले का ही है। वैदिक साहित्य में वायु, सत्यधर्म की महत्ता, ध्यान, आचार शुद्धि,ध्यानात्मक आसन की स्थिति आदि यौगिक तकनीकि अवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य का ही एक अंग ब्राम्हण ग्रथों में भी **प्राणविद्या** का विस्तृत वर्णन है। **प्रणव (ॐ)** का ज्ञान भी स्पष्ट था। ब्राम्हण ग्रंथ वेदो के कर्मकाण्ड भाग कहलाते है। इनके शथपथ ब्राम्हण में अनेकों सन्दर्भ प्राप्त होते है। अतः वैदिक काल से ही योग विज्ञान का विकास क्रमशः होते आ रहा है।

प्र. 5 योग विज्ञान की अवधारणा को संक्षिप्त में समझाइये?

उ. जीवन के जो भी धर्म है, उन सबके साध्य हेतु शरीर ही एक मात्र साधन है। साधन जितना समयक् होगा साध्य उतना ही उन्नत (उच्च) होगा। प्राचीन काल से आज तक मनुष्य ने जो कुछ भी भौतिक प्रगति की है उस सब में इस शरीर को ही सुख प्रदान करने का उद्देश्य निहित है। भारतीय वैदिक वाड़मय एवं बाद में दार्शनिक साहित्यालोचन सभी शरीर रूपी साधन से स्वास्थ्यानुसंधान रूपी साध्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे है।

स्वास्थ्यानुसंधान ही योगानुसंधान है। जड़ एवं चेतन के प्राकृतिक सामंजस्य से परे हटना ही **स्वा** की स्थिति से हटना है और **स्वा** में अर्थात् **समाधि** में स्थिति होने के लिए **क्रिया योग** की आवश्यकता होती है। शरीर को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (निरोग रखना) **तप** है, मन को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (मन का निग्रह या नियंत्रण) **स्वाध्याय** है। तथा आत्मा को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (आत्मा को तम के आवरण से रहित करना) **ईश्वर प्रणिधान** है। इसे ही **क्रिया योग** कहा जाता है। क्रिया योग ही साधना की प्रगाढ़ता में समाधि की योग्यता देता है जो योग विज्ञान का अन्तिम लक्ष्य है।

प्र. 6 स्वास्थ्य प्रबंधन में आष्टांगिक मार्ग पर प्रकाश डालिये?

उ. महर्षि पतंजलि **आंष्टागिक** मार्ग के आठ पद, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि को बतलाते है। यम, नियम के अभ्यास में वितर्क एवं सांसारिक द्वन्द्व बाधक होते है प्राणायाम का अभ्यास सिद्ध होने पर बुद्धि स्थिर हो जाती है। जब इन्द्रियाँ इस योग्य हो जाती है कि विषयों से संबंध बुद्धि के अनुसार ही कर सके, तब अहंकार समाप्त होकर चित्त शांत होने लगता है, शांत चित्त धीरे धीरे एकाग्र किये जाने पर संयमित होकर भूत एवं भविष्य को देख सकने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। यौगिक जीवन शैली बड़े व्यवस्थित क्रम से स्वा में स्थित होने के लक्ष्य को अपने आंष्टागिक मार्ग द्वारा प्राप्त करवाती है। अतः स्वाध्याय के प्रबंधन में योग मार्ग ही सम्यक् मार्ग है।

1.8 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

(1) भारत में शारीरिक शिक्षा — **विमला प्रसाद**
प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण
प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली

(2) योगा एण्ड डेथ साइकॉलाजी — **आई.पी.सचदेवा**
मोतीलाल बनारसीदास बेग्लों रोड
जवाहर नगर दिल्ली – 7

(3) रिसर्च कन्ट्रीब्यूशन ऑफ — **स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन**
(स्वामी विवेकानन्द योग अनुसंधान संस्थान)
बैंगलोर, 2001

(4) ''योगा एण्ड रिसर्च'' — **स्वामी कुवल्यानंद**
कैवल्यधाम लोनावाला – 410403
महाराष्ट्र पूना

(5) योग साइक्लोपीडिया — **डॉ. जयदेव योगेन्द्र**
भाग – **I, II, III**
दी योग इन्स्टीट्यूट सांताक्रूज
ईस्ट बम्बई – 400055

(6) सांख्यकारिका — **डा. बैजनाथ पाण्डेय**
भारतीय विद्या प्रकाशन
पो.बा.–1108, कचौड़ी गली,
वाराणसी 221001

(7) भक्ति सागरादि — **स्वात्माराम योगेन्द्र**
प्रकाशन खेमराज श्री कृष्णदास
प्रकाशन बम्बई – 1977

(8) पांतज्जल योग सूत्रवृत्तिः — **डॉ. विमला कर्णाटक**
प्रकाशन कृष्णदास अकादमी वाराणसी
पो.बा.नं.–1118 चौक, वाराणसी–1

(9) भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण — **संगम लाल पाण्डेय**
सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद

(10) योग दर्शन — **परमहंस निरंजनानन्द**
प्रकाशन श्री पंचमदशनाम परमहंस
अलखबाड़ा, देवधर, बिहार

(11) भारत के महान योगी
भाग 1 से 10
विश्वनाथ मुखर्जी
अनुराग प्रकाशन चौक वाराणसी
पो.बा.–1149, वाराणसी–1

(12) पातंजल योग विमर्श
डॉ. विजयपाल शास्त्री
क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी करमपुरा
नई दिल्ली – 15

(13) योग एस डेथ साइंकोलॉजी
एण्ड पैरा साइंकोलॉजी
Vol I हिस्टोरिकल बैकग्राउण्ड
डा. सी. टी. केन्गें
भारतीय मनीषा प्रकाशन वाराणसी

खण्ड 2 : योग विज्ञान के सिद्धान्त

इकाई 4

योग दर्शन का स्वरूप

योग विज्ञान के सिद्धान्त

इकाई 5

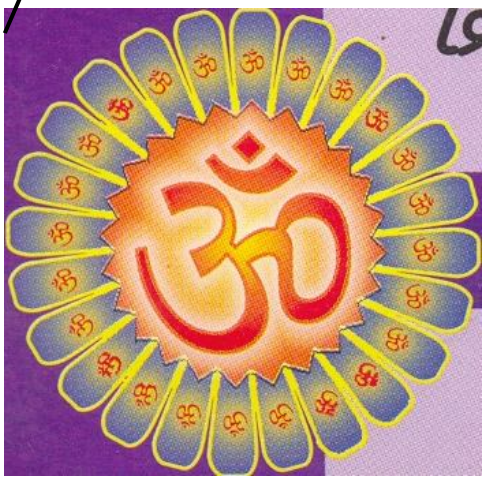

अर्थ एवं परिभाषाएँ

इकाई 6

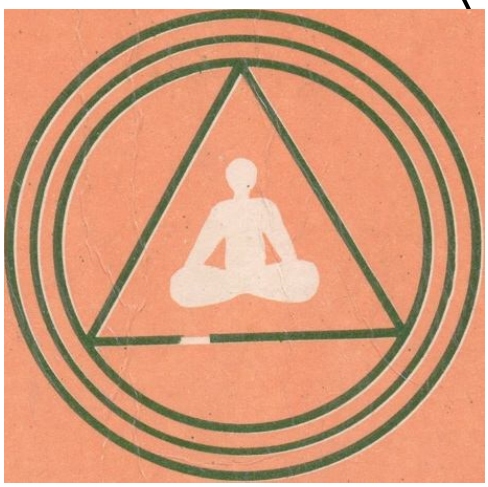

सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

खण्ड 2 : योग विज्ञान के सिद्धांत

प्रथम प्रश्न पत्र **''योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरूप''** के अध्ययन हेतु खण्ड 2 ''योग विज्ञान के सिद्धांत'' को तीन इकाईयों क्रमशः 4, 5, 6, में विभाजित किया गया है। इनमें इकाई 4 में **योग दर्शन का स्वरूप** इकाई 5 में **योग का अर्थ एवं परिभाषाऐं** तथा इकाई 6 में **योग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि** को सम्मिलित किया गया है।

खण्ड संरचना

2.0 प्रस्तावना 31

2.1 उद्देश्य 31

2.2 विषय प्रवेश 31

2.3 इकाई 4 : योग दर्शन का स्वरूप 33

- 2.3.1 दर्शन का अर्थ एवं महत्व
- 2.3.2 दर्शनों की समस्यायें
- 2.3.3 दर्शनों के प्रकार
- 2.3.4 योग दर्शन की दार्शनिक पृष्ठभूमि
- 2.3.5 योग दर्शन में पदार्थ विचार
- 2.3.6 योग दर्शन में कर्म विचार
- 2.3.7 योग दर्शन में मोक्ष विचार

2.4 इकाई 5 : योग का अर्थ एवं परिभाषाऐं 40

- 2.4.1 योग का अर्थ
- 2.4.2 योग की परिभाषायें

2.5 इकाई 6 : योग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि 44

- 2.5.1 योग का द्वैतवाद
- 2.5.2 योग दर्शन का त्रिगुण सिद्धांत
- 2.5.3 योग दर्शन में सृष्टि विचार

2.6 सारांश 48

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर 48

2.8 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ 50

2.0 प्रस्तावना

प्रथम प्रश्न पत्र के अंतर्गत इकाई 4, 5, एवं 6 का अध्ययन इस द्वितीय खण्ड में किया जाना है। इसके पूर्व आपने प्रथम खण्ड में योग विज्ञान की संकल्पना का भलीभाँति अध्ययन कर लिया है। अब हम योग विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन यहाँ करेंगे।

इकाई 4 को पढ़ने के बाद आप योग दर्शन के स्वरूप में बारे में जान पायेंगे कि योग दर्शन का अर्थ क्या है। योग दर्शन का महत्व क्या है। दर्शनों की समस्यायें क्या है। दर्शनों के कितने प्रकार है। योग दर्शन की दार्शनिक पृष्ठिभूमि क्या है। योग दर्शन के अनुसार पदार्थ विचार। योग दर्शन के अनुसार कर्म विचार एवं योग दर्शन में मोक्ष विचार का अध्ययन करेंगे।

इकाई 5 को पढ़ने के बाद आप योग का अर्थ एवं योग की विविध परिभाषाओं के संदर्भ में विस्तार से जानेगें।

इकाई 6 को पढ़ने के बाद आप योग की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि जिसके अन्तर्गत योग का द्वैतवाद योग दर्शन और त्रिगुण का सिद्धांत तथा योग दर्शन में सृष्टि विचार, योग दर्शन में मन एवं शरीर का संबंध के बारे में जानकारी हासिल करेंगे।

इस प्रकार इस द्वितीय खण्ड के अध्ययन से आप योग विज्ञान के सिद्धांतों से भलीभाँति परिचित होगें जिसकी आधार भूमि से आप योग विज्ञान में प्रवेश के योग्य हो सकेगें।

2.1 उद्देश्य

खण्ड 2 के अन्तर्गत इकाई 4, 5 एवं 6 के अध्ययन का उद्देश्य योग विज्ञान के सिद्धांतों से अवगत करवाना है। जिससे अध्येताओं के लिए योग विज्ञान की दार्शनिक गुत्थियों का हल सहजता से प्राप्त कर सकने की योग्यता उत्पन्न हो सके। साथ ही निम्नांकित उद्देश्यों को लेकर इस खण्ड का अध्ययन करवाया जाना है।

- इकाई 4 के अध्ययन द्वारा योग दर्शन के महत्व, योग दर्शन द्वारा हल की जाने वाले समस्यें, दर्शनों के प्रकार योग दर्शन की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पदार्थ, कर्म एवं मोक्ष के विचारों का योग दर्शन के संदर्भ में विशेष अध ययन करवाना।
- इकाई 5 के अध्ययन द्वारा योग के विविध अर्थो का ज्ञान स्पष्ट करवाना और योग के संदर्भ में विभिन्न शास्त्रों में दी गई परिभाषाओं का गहन् अध्ययन करवाना।
- इकाई 6 के अध्ययन द्वारा योग के विविध सिद्धांतों का अध्ययन करवाना जिनमें प्रमुखतः योग का द्वैतवाद, योग का त्रिगुण सिद्धांत, येाग दर्शन का सृष्टि विचार और योग दर्शन के अनुसार मन शरीर का क्या संबंध है। इस बारे में अध्ययन करवाना।

उपरोक्त योग के स्वरूप, अर्थ एवं सैद्धांतिक पृष्ठभूमि के अध्ययन उपरांत आप योग के अनेक सिद्धांतों उनकी दर्शनिक पृष्ठभूमि उनके महत्व को समझ सकने के योग्य स्तर प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 विषय प्रवेश

उपभोक्तावादी या भौतिक दृष्टिकोण से शान्ति की संभावना समाप्त हो जाने पर (जैसा कि आज अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, चीन आदि विकसित देशों में देखने को मिलता है) चिन्तनशील मानव ने ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक शान्ति के निमित्त से जिस शास्त्र का सृजन (उद्भावन) किया, उसे हम दर्शनशास्त्र के नाम से जानते है।

आर्यावर्त पावन भारतभूमि में विश्व के प्राचीनतम वाड्.मय ऋग्वेद से ही इस दार्शनिक–चिन्तन का प्रारम्भ स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है, जिसका विकास उपनिषदादि परवर्ती ग्रन्थों में देखा जाता है। ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्य निदिध्यासितव्यः च। अर्थात् 'आत्मदर्शन (सत्य का साक्षात्कार) करना चाहिए। यह **श्रुति का निर्देश** है। संसार के साथ ही सुख दुःख भी उत्पन्न होते हैं, क्योंकि संसार **त्रिगुणात्मिका प्रकृति** से उत्पन्न होता है, जो **सुख–दुःख** तथा **मोह** इन तीनों गुणों से अन्वित है। संसार का प्रत्येक जीव स्वभावतः सुख की प्राप्ति तथा दुःख की निवृत्ति चाहता है, जो आत्म साक्षात्कार से ही सम्भव है। अतः श्रुति ने आत्मदर्शन का उपर्युक्त आदेश दिया है, परन्तु भिन्न भिन्न ऋषियों–महर्षियों ने भिन्न–भिन्न मार्ग (विधि) से उस आत्मा का साक्षात्कार किया और इस साक्षात्कार से उन्हें जिस ज्ञान राशि किंवा परमानन्द की प्रतीति हुई, उसे लोकोपकारार्थ अपने शिष्यों में फैलाया। यही कारण है कि जिस ऋषि ने जो मार्ग दर्शाया वह उसका दर्शन कहलाया। इस प्रकार मूल रूप में कुल नौ दार्शनिक विचारधारायें या सम्प्रदाय देखने को मिलते हैं ये है :– 1. सांख्य 2. योग 3. न्याय4. वैशेषिक 5. पूर्वमीमांसा 6. उत्तर मीमांसा 7. चार्वाक 8. बौद्ध और 9. जैन। इनमें प्रथम छः षड़दर्शन या हिन्दू दर्शन कहलाते हैं। इन्हें आस्तिक दर्शन भी कहा जाता है। शेष चार्वाक एवं जैन तथा बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदाय – 1. माध्यमिक 2. योगाचार 3. सौत्रान्तिक 4. वैभाषिक मिलाकर कुल छः इन षडदर्शनों को नास्तिक दर्शन कहॉ जाता है क्योंकि ये वेदों को प्रमाण नहीं स्वीकार करते हैं।

भारतीय शास्त्रों में इन दर्शनों के अतिरिक्त एक अन्य दर्शन का विवरण भी उपलब्ध होता है, जो आधुनिक दर्शन ग्रन्थों में अप्राप्य है, इस दर्शन को **'मध्यमीमांसा'** अर्थात **'भक्ति सूत्र'** और दूसरा देवर्षि नारद कृत **''नारदसूत्र''।** भारतीय दर्शन के ''**भावात्मक स्वरूप''** के पर्यावसान में भक्ति–मीमांसा का बहुत महत्व है ''भक्ति मीमांसा'' को प्रसिद्ध षड्दर्शनों के साथ रखना आवश्यक एवं शोध का विषय भी है।

योग दर्शन का महत्व दर्शनशास्त्रों में तो है ही, किन्तु हमारे व्यावहारिक जीवन में भी इसका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य जीवन के उद्देश्य हैं – **धर्म, अर्थ, काम** तथा **मोक्ष** । ये चार ''**पुरूषार्थ**'' कहे जाते हैं। इनकी प्राप्ति के लिए शरीर और इन्द्रियों की एक चित्त की शुद्धि एवं उन पर नियंत्रण आवश्यक है। इसके बाद '**चित्त**' को स्थिर करना भी आवश्यक है। इन बातों के लिए हमें योगशास्त्र की शरण लेनी पड़ती है। '**चित्तवृत्ति'** के निरोध ही को तो **योग** कहा जाता। जब तक शरीर, इन्द्रिय तथा मन साधक के वश में नहीं आते, तब तक उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती। मोक्ष या दुःख निवृत्ति या आत्मा का साक्षात्कार ही तो **'परम पुरूषार्थ'** है। इसमें किसी का मतभेद नहीं है। इसीलिए श्रुति ने कहा है

''आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निधिध्यासितव्यः च''।

योग को ही **निदिध्यासन''** कहते है। परमपद की, मोक्ष की या कैवल्य की प्राप्ति में हर एक स्तर पर यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने में '**निदिध्यासन**' करना अनिवार्य ही होता है। इसके बगैर तत्वचिंतन (आत्म साक्षात्कार) के मार्ग पर एक पग भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है।

संसार में दो प्रकार के तत्व है – (1) बाह्य और (2) आभ्यान्तर – एक **जड़** और दूसरा **चेतन**। आभ्यन्तर तत्व **'चित्त'** है। प्रत्येक दर्शन में इन तत्वों की, किसी न किसी रूप में, सहायता आवश्यक है। साक्षात्कार करने ही से तत्वों का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है तत्व स्वयं, या उसका कोई अंश, जैसे – न्याय दर्शन का परमाणु इतना सूक्ष्म है कि '**योगज प्रत्यक्ष**' के बिना उसका ज्ञान हो ही नहीं सकता। इसलिए योग मार्ग की प्रक्रियाओं का ज्ञान या साध ाना सभी दर्शनों के लिये नितांत आवश्यक है।

क्योंकि भारतीय दार्शनिक जगत् (सम्प्रदायों) में यह माना जाता है कि बिना चित्त की शुद्धता के तत्व की उपलब्धि नहीं हो सकती। उपनिषदों में **तत्व ज्ञान** के लिए चित्त की शुद्धता का विस्तृत वर्णन है। **वेदान्त** में ज्ञान की प्राप्ति के लिए अन्तः करण के सभी मलों का पूर्ण विनाश नितान्त आवश्यक है। अन्तःकरण की शुद्धि के बिना मनुष्य को वेदान्त में अधिकार ही नहीं है। इस प्रकार भारत के प्राचीन ऋषियों ने चित्त शुद्धि के अनेक प्रकार के निर्देश दिए, जिनको कालान्तर में एकत्रित करके **महर्षि पतंजलि** ने **सांख्य के दार्शनिक सिद्धांतों** की आधार भूमि में सूत्र रूप

में एक स्वतंत्र दर्शन का प्रणयन किया यही दर्शन '**योग दर्शन**' के नाम से विख्यात है। इस दर्शन में भारतीय दर्शनों के सभी दार्शनिक सम्प्रदायों का समावेश मिलता है एवं किसी न किसी रूप में सभी दार्शनिक सम्प्रदाय उसका अनुगमन करते हैं। इन सब कारणों से योग विज्ञान के परिचय में योग विज्ञान के सिद्धांतों के दाशनिक स्वरूपों का परिचय इस खण्ड की तीन इकाईयों क्र. 4, 5 एवं 6 में प्राप्त करना सम्यक् होगा।

2.3 इकाई 4 : योग दर्शन का स्वरूप

2.3.1 दर्शन का अर्थ एवं महत्व

दर्शन शब्द संस्कृत की ''दृश'' धातु के 'करण' अर्थ में ल्युट प्रत्यय (अन्) लगाकर बना है जिसका अर्थ है जिसके द्वारा देखा जाये (दृश्यते अनेन इति दर्शनम्) यहाँ देखना भारतीय दर्शन में स्थूल नेत्रों से नहीं, बल्कि सूक्ष्म नेत्रों (प्रज्ञा चक्षुओं से) द्वारा परम् तत्वों को देखने के रूप में प्रयोग किया गया है।

अंग्रेजी में दर्शन को PHILOSOPHY कहते है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है PHILOS और SOPHIA जिसका अर्थ है गहरे ज्ञान (अध्यात्म विद्या) के प्रति तीव्र अनुराग (प्रेम)। भारतीय संस्कृति में परम् आनंद को देने वाली विद्या से दर्शन के अर्थ को लिया जाता है। मैक्समूलर का कथन इसी अर्थ को स्पष्ट करता है, ''भारत में दर्शन ज्ञान के लिए नहीं बल्कि उस सर्वोच्च लक्ष्य के लिये था जिसके लिये मानव इस जीवन में प्रयास कर सकता है।'' अतः दर्शन भारतीय संदर्भ में परम तत्वों का साक्षात्कार है।

भारतीय दर्शन का महत्व उसकी विशेषताओं में समाहित है ये विशेषताएँ निम्नलिखित है।

(1) भारतीय दर्शन में आध्यात्मिकता हैं यह नीतिशास्त्र और धर्म के क्षेत्र से ऊपर उठना सिखलाता है।

(2) भारतीय दर्शन की जीवन से अत्याधिक निकटता है। केवल मानसिक जिज्ञासा न होकर दर्शन आत्मिक शांति का स्त्रोत है।

(3) भारतीय दर्शन मानता है अज्ञान संसार का स्वभाव है। अतः सांसारिक कार्यों में ही बन्धन है और ज्ञान ही मोक्ष है।

(4) भारत के सभी दार्शनिकों ने मोक्ष (मुक्ति) को जीवन का लक्ष्य माना है। अज्ञान को ज्ञान से नष्ट कर अपने वास्तविक रूप को पहचानने से जीवन में दिव्य रूपांतरण होता है तब सांसारिक माया, मोह, क्रोध तथा लोभादि दुखों से छुटकारा प्राप्त होने को ही मोक्ष कहते है। मोक्ष नीति और धर्म से परे एक अवस्था है।

(5) मोक्ष प्राप्ति में साधना (अभ्यास) और योग (वैराग्य) के महत्व पर बल।

(6) भारतीय दर्शन मनोवैज्ञानिक सत्यों पर आधारित है। भारतीय चिंतकों ने सूक्ष्म अनुभवों द्वारा जीवन के पक्षों का गहरा मनोविश्लेषण कर शारीरिक एवं मानसिक नियंत्रण हेतु योग साधना की अद्वितीय आधार भूमि प्रदान की है।

(7) भारतीय दर्शन में धर्म और जीवन दर्शन में अनुपम समन्वय स्थापित किया गया है। जीवन का रूपांतरण और सांसारिक दुखों से मोक्ष पाना धर्म और दर्शन दोनों का लक्ष्य है।

(8) भारतीय दर्शन में जीवन के समस्त पक्षों पर जोर दिया गया हैं भारतीय दर्शन का लक्ष्य केवल मोक्ष प्राप्त करना ही नहीं था, वरन समाज में आध्यात्मिक रूपांतरण करना भी रहा। इसी कारण गौतम बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य जैसे व्यक्तित्व दार्शनिक होने के साथ समाज सुधारक भी रहे है।

(9) भारतीय दर्शन सदैव प्रगतिवादी दर्शन रहा है। जब कभी किसी सिद्धांत की स्थापना की गई तो उसके विरोध पक्ष की भी स्थापना हुई। जड़वाद, आध्यात्मवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टा–द्वैतवाद आदि सभी परस्पर विरोधी मतों की स्थापना द्वारा भारतीय दर्शन में सदैव गतिशील एवं जीवंतता बनी

हुई है।

(10) विश्व की शाश्वत नैतिक व्यवस्था में विश्वास चार्वाक दर्शन को छोड़कर समस्त आस्तिक दर्शन विश्व में एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था देखते है। इस सार्वभौम नैतिक व्यवस्था से धर्म की उत्पत्ति हुई, इसी धार्मिक और सार्वभौम नैतिक व्यवस्था के अनुसार प्रकृति, देवता, जीव, नक्षत्र आदि सभी चलते है। अतः विश्व एक नैतिक व्यवस्था पर आधारित है ऐसी मान्यता में विश्वास है।

(11) भारतीय दार्शनिक जगत् की उपरोक्त मान्यताओं के साथ ही अनेक विशेषताओं जैसे भूतकाल में आस्था व विश्वास, कर्म में विश्वास, पुर्नजन्म में विश्वास, संसार की सत्ता में विश्वास, आत्मनियंत्रण और आत्मसाक्षात्कार को महत्व तथा श्रवण, मनन और निधिध्यासन को आचरण में स्वीकार्यता भारतीय दार्शनिक जगत् के महत्व को स्पष्ट करने में सक्षम है।

उपरोक्त महत्वों से स्पष्ट है कि भारतीय दर्शन में अनेकानेक शाश्वत सत्यों की विभिन्न वर्गों द्वारा विभिन्न समय में खोज की गई। भारतीय दर्शन का मुख्य लक्ष्य ब्रहम साक्षात्कार या आत्मसाक्षात्कार होने के कारण सांसारिक स्तर पर जीवन व्यतीत करते हुए परम लक्ष्य का मार्ग दर्शन करके आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचने के विभिन्न मार्गो जैसे ज्ञान, कर्म और भक्ति की धारायें सभी मनुष्यों के यथायोग्य निर्वहन को पूर्ण सामर्थ्य प्रदान करते है।

2.3.2 दर्शनों की समस्यायें

सभी दर्शनों के चार प्रतिपाद्य विषय है जो इस प्रकार है –

(1) **हेय** :– दुख का वास्तविक स्वरूप क्या है, जो ''**हेय**'' अर्थात त्याज्य है ?

(2) **हेय हेतु** :– दुख कहाँ से उत्पन्न होता है, इसका वास्तविक कारण क्या है, जो हेय अर्थात त्याज्य दुख का वास्तविक हेतु है

(3) **हान** :– दुख का नितान्त अभाव क्या है, अर्थात ''हान'' किस अवस्था या स्थिति का नाम है?

(4) **हानोपाय** :– हानोपाय अर्थात् नितान्त दुःखनिवृति का साधन क्या है?

महर्षि पतंजलि योग सूत्र के प्रथम पाद में दर्शनों की इन समस्याओं का निराकरण करते है।

2.3.3 दर्शनों के प्रकार

वेदों को प्रमाण मानने वाले छः दर्शन (षड़दर्शन) प्रमुख है।दर्शनों के प्रतिपाद्य विषयों का हल षड़दर्शन विभिन्न प्रकार से करते है। ये षड़दर्शन निम्नलिखित तालिका क्रमांक 1 के अनुसार है –

क्र.	दर्शन का नाम	दर्शनों के रचनाकार	रचना काल
(1)	मीमांसा, दर्शन (पूर्व मीमांसा)	महर्षि जैमनी	225 ई.पू.
(2)	वेदान्त दर्शन (उत्तर मीमांसा)	महर्षि बादरायण	201 ई.पू
(3)	न्याय दर्शन	महर्षि गौतम	100 ई.पू.
(4)	वैशेषिक दर्शन	महर्षि कणाद	375 ई.पू.
(5)	सांख्य दर्शन	महर्षि कपिल	700 ई.पू.
(6)	योग दर्शन	महर्षि पतंजलि	80 ई.पू.

(तालिका क्र.–1)

2.3.4 योग दर्शन की दार्शनिक पृष्ठभूमि

सामान्यतः ऐसा समझ लिया जाता है कि योग तो किसी प्रकार की क्रिया या क्रियाओं का समुच्चय है और

दर्शन वाग्विलास तथा तार्किक द्वन्द्व और शास्त्रार्थ की विषय वस्तु है। इसमें संदेह नहीं कि यह बात अंशतः सत्य है, परंतु योग और दर्शन एक दूसरे से उतनी दूर नहीं है जितने कि मान लिऐ जाते है। योग का लक्ष्य है सत्य का साक्षात्कार कराना और दर्शन का कार्य है इस विश्व को समझने में सहायोग देना। विश्व में जहाँ छोटे छोटे जीव जन्तु हैं वही बड़े बड़े देवता भी है। चेतन पदार्थ है तो जड़ पदार्थ भी है। इस विश्व में ही हमारा ''चित्त'' है और यह चित्त एक ओर योगाभ्यास में रत होता है और दूसरी ओर काम क्रोध, लोभ से प्रेरित चेष्टाओं में। चित्त में ही योग की ऊंची ऊंची अनूभूतियां होती हैं और प्रतिदिन (नित्य) का छोटे से छोटा अनुभव भी। इन सब बातों का समन्वय करना तथा इनको एक मंच पर ले आना दर्शन का काम है। यदि ऐसा न किया जावेगा तो हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं में सामंजस्य नहीं रहेगा। हम एक ही साथ कई लोकों में रहेंगे जिनकी सीमाएँ कही न मिलती होंगी। इसलिये यदि कोई तथ्य सचमुच दर्शन है तो योग की अनुभूतियों को भी उसके द्वारा समझा जाना चाहिये। यदि वह ऐसा नही कर सकता तो सचमुच उसका आधार केवल मनुष्य के उर्वर मस्तिष्क की कल्पना मात्र होगी। और वह सचमुच केवल बौद्धिक अखाड़े में उतरने वालों के मनोरंजन की सामग्री मात्र बन कर रह जायेगा। ऐसे ही दर्शन को लक्ष्य करके वेदान्त के एक सूत्र में कहा गया है – तर्क अप्रतष्ठित है। एक विद्वान कोई तर्क उपस्थित करता है तो दूसरा विद्वान उस तर्क का खण्डन कर देता हैं। दर्शन यदि सचमुच विश्व को समझाने का दावा करता है तो, सत्य के साक्षात्कार की उन अनुभूतियों से काम लेना चाहिये जो योग के द्वारा सामने आती हैं और योग को दर्शन की सार्वभौम सामग्री का अंग बनना ही पड़ेगा। दोनों में अन्योन्याश्रय सबंध है।

योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पंतजलि ने सांख्यदर्शन के सिद्धांतों को ज्यो का त्यों मान लिया है। दोनो दर्शनों की मान्यताओं में एक दो तथ्यों में भिन्नता अवश्य है किन्तु मुख्य बातें एक ही हैं। सांख्य दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि कपिल का स्थान बड़ा ऊंचा है। **''सिद्धानां कपिलो मुनिः''** कहकर योगेश्वर श्री कृष्ण ने महर्षि कपिल की योगियों में श्रेष्ठता सिद्ध कर दी है। सांख्य दर्शन संसार के सभी दर्शनों में प्रचीन है तथा मनोविज्ञान की आज भी कई समस्यायें सांख्य के सिद्धांतों के बिना नहीं सुलझाई जा सकती है। सांख्याचार्य ईश्वर कृष्ण ने सांख्य को सारांश रूप में इस प्रकार समझाया है।

मूल प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्यः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरूषः।।

प्रकृति और विकृति दो तकनीकि शब्द है जिन्हे समझने पर ही उपरोक्त सूत्र समझ में आ पाता है। प्रकृति उसे कहते है जिसमें अनेक नये नये पदार्थ सृजन कर सकने की क्षमता हो तथा विकृति वे पदार्थ है जिनमें प्रकृति के अनुरूप सृजन क्षमता नही रहती है उन्हें विकृति कहते हैं। जगत के मूल में दो पदार्थ सांख्य दर्शन मानता है प्रथम पुरूष और दूसरा प्रधान या प्रकृति या अचित् जड़। योग दर्शन भी इसी आधार पर दृढ़ है किन्तु एक तत्व ईश्वर को भी यहाँ मान्यता देता है। योग दर्शन सांख्य की पृष्ठ भूमि पर तीन तत्वों को निम्नानुसार मान्यता देता है श्रीमद्भगवत गीता भी इसमें सहमति को पुष्ट करती है।

''सांख्ययोगौ'' पृथक बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः''।

(1) जीव तत्व (आत्मा, पुरूष या चेतनतत्व) – सांख्य दर्शन केवल दो ही तत्व मानता है (अ) पुरूष और (ब) प्रकृति। इसमें पुरूष तत्व को सांख्य निष्क्रिय कूटस्थ, नित्य मानता है। जड़ तत्व के सम्बंध से व्यष्टिरूप में सभी चेतन तत्व या आत्माएँ जीव भाव में होती है। तथा असंख्य होती है। ऐसा सांख्य एवं योग दोनो का मत है।

(2) ईश्वर तत्व (परमात्मा, पुरूष विशेष या चेतन तत्व) – योग दर्शन सांख्य के पुरूष तत्व को मानता है किन्तु इसका मत है कि सृष्टि प्रक्रिया में जड़ एवं चेतन का संयोग कराने वाला एक तीसरा तत्व होना आवश्यक है और वह तत्व दोनों चेतन और जड़ तत्वों से पृथक ऐसा तत्व जो चेतन तत्व के सर्वांश अनुकूल
हो और दूसरे जड़ तत्व के विपरीत हो, अर्थात जिसमें दुःख जड़ता और अज्ञान का नितान्त अभाव हो, जहाँ तक पहुँचना आत्मा का अंतिम ध्येय हो, जो ज्ञान का पूर्ण भंडार हो जहाँ से ज्ञान पाकर आत्मा जड़ चेतन का विवेक प्राप्त कर सके और अविद्या के बंधनों को तोड़कर 'हेय दुःख से सर्वथा मुक्ति प्राप्त कर सके। इसे ही ईश्वर तत्व कहा गया है। जड़

तत्व के संबंध से समष्टि रूप में चेतन तत्व ईश्वर या ब्रम्ह ही है। ऐसी मान्यता सांख्य एवं योग दर्शन की है।
(3) जड़ तत्व (प्रकृति) :– चेतन तत्व से भिन्न सक्रिय, परिणामिनी नित्य, अव्यक्त, अलिंग, प्रधान त्रिगुणात्मक, अविकृति तथा गुणों की साम्यावस्था को कहते है। ऐसे तत्व को चेतन तत्व के सापेक्ष मानने की आवश्यकता होती है जिसका धर्म दुःख है, जहाँ से दुःख की उत्पत्ति होती है और जो इस चेतनतत्व से विपरीत धर्मवाला है। दुःख जो जड़तत्व का स्वाभाविक गुण है न कि आत्मा या चेतन का। जड़ और चेतन तत्व में आसक्ति या अविवेकपूर्ण संयोग ही 'हेय'' अर्थात त्याज्य दुःख का वास्तविक स्वरूप है। और चेतन तथा जड़ तत्व का अविवेक अर्थात मिथ्या ज्ञान या अविद्या ''हेयहेतु'' अर्थात त्याज्य दुख का कारण है। चेतन और जड़ तत्व का विवेकपूर्ण ज्ञान ''हानोपाय'' दुख निवृत्ति का मुख्य साधन है। सांख्य और योग सम्मत् इस जड़ तत्व प्रकृति या प्रधान से इस दृश्य जगत् की उत्पत्ति हमने इकाई एक में योग की संकल्पना में विस्तार से देख चुके है।

2.3.5 योग दर्शन में पदार्थ विचार

योगशास्त्र में केवल बौद्धिक विषयों का विचार है। इनमें वस्तुतः विचार के लिए एकमात्र तत्व है **'चित्त'** अर्थात **''बुद्धि''** इसी के विविध स्वरूपों का योगशास्त्र में विचार है।

योग' का अर्थ है समाधि (योगः समाधि – योगाभाष्य 1–1) इसी को ''चित्तवृत्ति का निरोध'' भी कहते है। यह 'समाधि' चित्त का ही स्वाभाविक एक धर्म है। इस 'चित्त' की पाँच अवस्थाएँ होती हैं, जिन्हें **''चित्त की भूमि''** कहते हैं ये है – (1) क्षिप्त (2) मूढ़ (3) विक्षिप्त (4) एकाग्र तथा (5) निरूद्ध

सांख्य के समान योग में भी ईश्वर को छोड़कर अन्य तत्वों में सत्व, रजस् तथा तमस् रहते है। 'सत्व' के उद्रेक होने से ही साधक समाधिस्थ होता है। रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक से चित्त समाधि के योग नहीं होता। चित्त की भूमियाँ इन त्रिगुणों के अनुरूप ही होती है।

(1) **रजोगुणी चित्त** –: रजोगुण के प्रभाव से 'चित्त' बहुत चचंल होकर सांसारिक विषयों में इधर–उधर भटका करता है, उस अवस्था में उस चित्त को **''क्षिप्त''** कहते हैं जैसे दैत्य, दानवों का चित्त अथवा धन के मद से उन्मत्त लोगों का चित्त।

(2) **तमोगुणी चित्त** –: तमोगुण के उद्रेक से 'चित्त' मूढ़ हो जाता है, जैसे कोई निद्रा में मग्न हो तो उसके चित्त को ''मूढ़'' कहते हैं। राक्षसों के पिशाचों के तथा मादक द्रव्य खाकर उन्मत्त पुरूषों के ''चित्त'' मूढ़ कहे जाते हैं।

(3) **सत्तोगुणी चित्त** –: सत्व के आधिक्य रहने पर भी रजस् के कारण सफलता और असफलता के बीच में कभी इधर और कभी दूसरी तरफ चित्त की वृत्ति भटकती रहती है। कहते है कि देवताओं का तथा प्रथम–भूमि में स्थित जिज्ञासुओं का चित्त **''विक्षिप्त''** होता है। सत्व के आधिक्य के कारण राजसिक वृत्ति के रहने पर भी इस भूमि में कभी–कभी स्थिरता आ जाती है। 'क्षिप्त' अवस्था में यही वैशिष्ट्य इस भूमि का है। इसीलिए इस अवस्था के चित्त को **''विक्षिप्त''** कहते हैं।

(4) **विशुद्ध चित्त**–: शुद्ध सत्तोगुणी चित्त के एक ही विषय में लगे हुए चित्त को **'एकाग्र'** कहते है। यह निर्वात में रखे दीपक की स्थिर लौ के समान इधर–उधर नही जाता है।

(5) **निरूद्ध चित्त** –: चित्त की सभी वृत्तियों के शांत हो जाने पर इन वृत्तियों के संस्कार मात्र चित्त में रह जाते है। इन संस्कारों से युक्त चित्त **''निरूद्ध''** कहा जाता है।

इनमें प्रथम तीन भूमियों में यद्यपि कुछ मात्रा में वृत्ति का निरोध है, किन्तु ये तीनों भूमियाँ योग साधन के लिए वस्तुतः उपयुक्त नहीं है, प्रत्युत ये योग के **उपघातक** हैं। अतएव योग के साधनों से ये दूर कर दिये गये हैं। अंतिम दो **एकाग्र** एवं **निरूद्ध** योगशास्त्र के **'लक्ष्य'** है। उनमें प्रधान रूप से ''निरूद्ध अवस्था ही ''योग है। पंतजलि सूत्र में **योगश्चित्त वृत्ति निरोधः** का यही आशय है। चित्त त्रिगुणात्मक है। तीनों गुणों के उद्रेक क्रमशः समय–समय पर **''चित्त''** में होते रहते हैं। उसके अनुसार 'चित्त' के भी तीन रूप होते हैं

''चित्त'' जड़ है और ''पुरूष'' चेतन है। अनादि अविद्या के कारण पुरूष और 'प्रकृति' में परस्पर एक प्रकार का अभेद सम्बंध हो जाता है। इससे बुद्धि की वृत्तियों का पुरूष में आरोप होता है और मैं शांत हूँ, दुखी हूँ तथा

मूढ़ हूँ इस प्रकार के ज्ञान पुरूष में उदित होते हैं। बुद्धि की विषयाकार वृत्तियां पुरूष में प्रतिबिम्बित होती हैं, वही **''पुरूष की वृत्ति''** कही जाती है। पुरूष का प्रतिबिम्ब **'चित्त'** पर पड़ता है। उससे चित्त भी अपने को चेतन के समान समझने लगता है और चेतन की तरह कार्य करने लगता है यही चित्त की वृत्ति हैं। इस प्रकार इन दोनों में परस्पर आरोप होता है। यही योग दर्शन का **पदार्थ विचार** है।

2.3.6 योग दर्शन में कर्म विचार

(1) कर्म का महत्व – सभी दर्शनों में कर्म सिद्धांत पर विचार किया गया है। वस्तुतः कर्म हमारे जीवन का तथा दर्शन का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है। संसार की प्रत्येक वस्तु में ''रजोगुण'' रहता ही है। रजोगुण का स्वभाव है – क्रियाशील होना। अतः प्रत्येक वस्तु में किसी न किसी रूप में **''क्रिया''** रहती ही है। श्रीमद्भगवत गीता में भी इसे स्पष्ट किया गया है।

'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणः ।।

अर्थात सभी प्राणियों को ''कर्म'' करना ही पड़ता है। योगशास्त्र में कर्म को अत्याधिक महत्व दिया गया है। परम् लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कर्म एक प्रधान साधन है। कर्म करने के अनन्तर उससे चित्त में संस्कार अर्थात कर्माशय उत्पन्न होता है और वही ''वासना' को उत्पन्न करता है और फिर उसी वासना के अनुरूप जीव की उत्पत्ति तथा संसार में उसके कर्म होते हैं। यह **'कर्मचक्र'** अबाधित गति से अनवरत संसार में चलता ही रहता है। कर्म की गति अनादि है। अविद्या अनादि है और इसी अविद्या के कारण कर्म की उत्पत्ति होती है।

(2) कर्म के भेद –: कर्म चार प्रकार के होते हैं। (i) कृष्ण (ii) शुक्ल कृष्ण (iii) शुक्ल तथा (iv) अशुक्ल – अकृष्ण

(i) **कृष्ण** :– दुर्जनों के कर्म कृष्ण होते है।

(ii) **शुक्लकृष्ण** :– बाह साधनों से उत्पन्न शुक्लकृष्ण कर्म साधारण लोगों के होते है। जीवन यापन करने के लिए उन्हें साधारण रूप से पुण्य और पाप दोनों ही करने पड़ते है। इस कारण शुक्ल कृष्ण कर्म के द्वारा दूसरों को पीड़ा देने तथा उनके प्रति अनुग्रह दिखाने से उनका कर्माशय संचित होता है।

(iii) **शुक्ल कर्म** :– तपस्या स्वाध्याय तथा ध्यान में निरत लोगों के कर्म केवल मन के अधीन होते हैं, इसलिए उन्हें ब्राहय साधनों की अपेक्षा नहीं होती। इसीलिये उस प्रकार के कर्मो के द्वारा निश्चित रूप से न तो दूसरो को पीड़ा ही दी जा सकती है और न अनुग्रह ही दिखाया जा सकता है। इन कर्मो को शुक्ल कर्म कहते है।

(iv) **अशुक्ल–अकृष्ण कर्म** :– योगी लोग उन्ही कर्मो को करते हैं जिनके द्वारा उनकी चित्तवृत्तियाँ निरूद्ध हो सकें। अतएव उनके चित्त में विद्यमान पुण्य और पापों के संस्कार भी निवृत हो जाते हैं। वे लोग पाप उत्पन्न करने वाले कर्म तो करते ही नहीं, किन्तु तप, ध्यान, आदि के द्वारा पुण्य जनक जो कर्म करते हैं, उनके फल को प्राप्त करने की इच्छा भी उन्हें नहीं होती। इस कारण उनके कर्म अशुक्ल–अकृष्ण कहे जाते है। कर्म के फलों की इच्छा न होने से अशुक्ल तथा निषिद्ध कर्मो को न करने के कारण ''अकृष्ण'' योगियों के कर्म होते हैं।

साधारण लोगों के कर्म प्रथम तीन प्रकार के ही होते है। इन तीन प्रकार के कर्मो से उनके अनुरूप वासनाएँ भी उत्पन्न होती हैं, जिस प्रकार के वे कर्म होते हैं। दिव्य कर्म करने से उसी के अनुरूप **दिव्य वासना** उत्पन्न होती है। मानवीय कर्मो से उत्पन्न वासनाओं के फलों के भोग के समय में दिव्यकर्मो के फलों का कभी भी भोग नहीं होता है। इसी प्रकार नारकीय तथा तैर्यक् वासनाओं के लिए भी उपर्युक्त ही नियम है।

(3) कर्माशय या वासनाओं की प्रवृत्ति :– वासनाओं की प्रक्रिया बहुत नियंत्रित तथा विचित्र होती है। कभी भी कोई **फल–भोग** बिना उसकी वासना के नहीं हो सकते। देश और काल इस नियम में व्यवधान नहीं करते। कोई भी कर्मफल आकस्मिक नहीं होता। मरने के पश्चात् ही किसी का जन्म पूर्व–वासनाओं की सहायता के बिना नहीं होता। जिस योनि में जिसका जन्म होने को होता है, उस योनि के कर्म–फलों के भोग करने के योग्य पूर्व–पूर्व जन्मान्तरों में किये हुए तदनुरूप कर्मो से उत्पन्न वासनाएँ अभिव्यक्त हो जाती है। उदाहरणार्थ – एक जीव पहले मनुष्य था। वह मरने के बाद पशुयोनि में जन्म ग्रहण करने जा रहा है। इस स्थिति में उस मनुष्य ने अनेक पूर्व जन्मों में पशुयोनियों के उचित कर्म किये थे और तदनुकूल उसकी पाशविक वासनाएँ भी चित्त (कर्माशय) में विद्यमान थीं। अब कई जन्म व्यतीत होने के बाद भी पाशविक जन्म लेने के इस अवसर पर वे ही वासनाएँ उद्‌बुद्ध होकर उसके इस पशुयोनि में जन्म लेने के कारण बनेंगी। ये वासनाएँ अनादिकाल से सतत् चली आ रही है।

ये वासनाएँ हेतु, फल, आश्रय, तथा आलम्बन के द्वारा स्थायित्व प्राप्त करती है। और इनके न रहने पर अर्थात इनके नाश होने से (बीजक्षय) इनसे निवृत्ति भी हो जाती है।

4. वासना के कारण :– वासनाऐं होने का कोई हेतु होता है। हेतु का फल होता है। तथा फल का कोई आश्रय होता है। इस आश्रय के लिए कोई आलम्बन होना चाहिये। उदाहरणार्थ –:

(i) **हेतु** – धर्म से सुख, अधर्म से दुःख सुख से राग और दुख से द्वेष इन दोनों से 'प्रयत्न' जिसके कारण मन में वचन में, तथा शरीर में चेष्टाएँ होती हैं, जिनके द्वारा जीव किसी को अनुगृहीत करता है, या पीड़ा देता है। इससे धर्म और अधर्म सुख और दुख तथा राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं। इसी क्रम से इन छः धर्म आदि शालाकाओं के सहारे यह संसार चक्र चलता है। यही संसार चक्र वासनाओं का हेतु है। प्रतिक्षण क्रियाशील इस 'संसारचक्र' का कारण है **अविद्या**। यही है सभी क्लेषों का मूल, इसलिए यही है वासनाओं का वास्तविक हेतु।

(ii) **फल** – जिसको आश्रय या लक्ष्य मान कर उपर्युक्त धर्म आदि की विद्यमानता हो, वही 'फल' है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्यरूप फल कारण रूप वासना में अवश्य रहता ही है।

(iii) **आश्रय** – साधिकार मन वासनाओं का **''आश्रय''** है। अधिकार से च्युत निराश्रय होकर, रहने वाले मन में वासना नहीं रह सकती है।

(iv) **आलम्बन** – अभिमुख में प्राप्त वस्तु जिस वासना को उत्पन्न करे, वही उस वासना का **''आलम्बन''** होता है।

इस प्रकार हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन ही **''वासना''** को उत्पन्न करते हैं और इनके न होने से **''वासना''** उत्पन्न नहीं होती।

5. संस्कार – कर्म के अंतर्गत हमने देखा कि **''कर्म''** करने के पश्चात् उससे **''कर्म–संस्कार''** या **कर्माशय'** बनता है। ये **'संस्कार'** पुण्यात्मक तथा अपुण्यात्मक होते हैं और काम, लोभ, मोह तथा क्रोध से उत्पन्न होते है। ये पुनः दृष्टजन्मवेदनीय तथा अदृष्टजन्मवेदनीय हैं। इनमें तीव्र वैराग्य से की गयी तपस्या, मन्त्रजप, तथा समाधि के द्वारा अथवा ईश्वर, देवता महर्षि एवं महानुभावों की आराधना से उत्पन्न ''कर्माशय' पुण्यात्मक' होते है। ये सद्यः अपना फल देते हैं। इसी प्रकार तीव्र अविद्या आदि कलेशों से भयभीत, व्याधिग्रस्त, दीन, शरणागत तथा महानुभावों के प्रति अथवा तपस्वियों के प्रति बारंबार अपकार करने से 'पापात्मक' कर्माशय उत्पन्न होता है। ये सभी सद्यः अपना फल देते हैं।

नारकीयों का **'दृष्टजन्मवेदनीय'** कर्माशय नहीं होता और जीवन्मुक्तों का अदृष्टजन्मवेदनीय' कर्माशय नहीं होता। इस प्रकार योग दर्शन अपना कर्मविचार बड़ी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करता है।

2.3.7 योग दर्शन में मोक्ष विचार

सांख्य दर्शन की आधार भूमि में योग दर्शन भी **बन्धन** का मूल कारण **अविवेक** को मानता है। योग दर्शन भी मोक्षावस्था को सुख दुख से परे की अवस्था मानता है। मोक्ष (कैवल्य) प्राप्ति के लिए यहाँ तत्व ज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। तत्व ज्ञान की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती है जब तक मनुष्य का चित्त विकारों से परिपूर्ण है। अतः चित्त की स्थिरता तथा चित्तवृत्ति निरोध के लिए यहां आठ मार्ग बताए गए हैं जिन्हें अष्टांग मार्ग भी कहा जाता है। ये आठ मार्ग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान एवं समाधि है। समाधि योग दर्शन का अंतिम अंग है जिसका आशय है की अभीष्ट विषय का निरन्तर अनुशील करना। इस अवस्था में ध्येय वस्तु की ही चेतना रहती है। इस अवस्था में मन अपने ध्येय विषय में पूर्णतः विलीन हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसे अपना कुछ भी ज्ञान नही रहता। यहाँ समाधि दो प्रकार की मानी गई है। (1) सम्प्रज्ञात समाधि तथा (2) असम्प्रज्ञात समाधि। सम्प्रज्ञात समाधि में ध्येय विषय का स्पष्ट ज्ञान रहता है अतः इसे सबीज समाधि भी कहा जाता है। असम्प्रज्ञात समाधि में ध्यान का विषय ही लुप्त हो जाता है। इस अवस्था में आत्मा अपने यथार्थ स्वरूप को पहचान लेती है। इस समाधि में ध्यान की चेतना का पूर्णतः अभाव रहता है। अतः इसे निर्बीज समाधि भी कहा जाता है। यही निर्बीज समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेना योग दर्शन के अनुसार मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति है। निर्बीज से आशय कर्माशय के संस्कारों का पुनः उत्पन्न न होना। संस्कारों के कारण चित्त में उत्पन्न वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाना प्रशांत चित्त हो जाना ही योग दर्शन का मोक्ष है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1 दर्शनों की प्रमुख समस्यायें क्या है ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2 योग दर्शन के अनुसार कर्म की अवधारणा समझाइयें ?

_____

_____

_____

_____

_____

2.4 इकाई 5 योग का अर्थ एवं परिभाषायें

2.4.1 योग का अर्थ

प्राचीन भारतीय चिन्तक एवं दार्शनिक तत्वज्ञान को प्राप्ति के बाद तत्वानुभूति के लिए तत्पर रहते थे। वे केवल तत्वज्ञान मात्र से संतुष्ट नहीं रहते थे। फलतः तत्वानुभूति के साधन के रूप में योग विज्ञान का विकास हुआ और आगे चलकर अष्टांगयोग के साधन मार्ग का आविर्भाव हुआ। तत्वज्ञान तथा तत्वानुभूति आदि उन भावों की प्राप्ति में सहायक होने से शरीर तथा मानसिक स्वस्थता हेतु भी योग की उत्पत्ति हुई। इसी तारतम्य में योग के विविध अंग **मंत्र, लय,** हठ इत्यादि विकसित हुऐ और यही विज्ञान **चेतना विज्ञान** के अतिरिक्त **'देह–मानसशास्त्र'** भी बनता गया।

योग का शब्दिक अर्थ विभिन्न आधारों पर व्यवहृत है। व्याकरण की दृष्टि से ''युज'' धातु के बाद करण और भाववाच्य में **''घञ्''** प्रत्यय लगाने से बनता है। **''युज''** धातु का अर्थ है समाधि इस प्रकार योग शब्द का वास्तविक अर्थ समझने की आवश्यकता है। **''समाधि''** शब्द का अर्थ है सम्यक् प्रकार से अपने अंतर्मन के साथ युक्त हो जाना, मिल जाना, एक हो जाना जीव की कामना, वासना आसक्ति, संस्कार आदि सब प्रकार की आगन्तुक मलिनता को दूर कर स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर, मुख्यभाव से अंतर्मन में मिल जाना। योग शब्द का अर्थ है जीव आर ब्रम्ह्य का पूर्णरूपेण मिलन। पाणिनि के गणपाठ में तीन 'युज्' धातु है। **दिवादिगण** के युज् धातु का अर्थ समाधि है। दूसरा युज् **रूध ाादिगण** में है, जिसका अर्थ **संयोग** होता है तथा तीसरा युज **चुरादिगण** मे है, जिसका अर्थ मिलाप होता है। समाधि ाबोधक युज धातु से ही यहां योग शब्द का उद्भव माना गया है। **''युज समाधौ''** धातु से योग समाधि के अर्थ में बहुत व्यापकता लिये हुऐ है। युजिर् योगे धातु से भी योग शब्द बनता है जिसका अर्थ जुड़ना अर्थात जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलजाना एक हो जाना। प्रायः हठयोगी एवं अन्य साधक भी योग का यही अर्थ लेते हैं। परंतु ऐसा स्थूल अर्थ लेना उचित प्रतीत नहीं होता। कारण यह है कि जीवात्मा और परमात्मा पृथक् वस्तु नहीं है, किन्तु चेतनतत्वेन एक ही है। भेद तो अविद्या जन्य है अतः औपाधिक है। भेद दर्शानेवाली अविद्या की योग समाधि द्वारा निवृत्ति हो जाने पर चेतन में भेद नहीं रह जाता। चेतन एक ही रह जाता है, जैसे घटाकाश और मठाकाश की उपाधिरूप घट और मठ नष्ट हो जाने पर एक महाकाश ही शेष रह जाता है। अतः जीवत्व–भाव का विलोप करके ब्रह्यभाव में स्थित हो जाना ही योग है। इसी को जीवात्मा और परमात्मा मिलकर एक हो जाना कहा गया है। योगांगों का अभ्यास करते हुए चित्तवृति–निरोध पूर्वक असम्प्रज्ञात समाधि भूमिका में पहुंचकर अपने चैतन्य स्वरूप या ब्रम्ह्यस्वरूप में स्थित हो जाना ही योग है।

सामान्यतः योग का अर्थ है स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना अर्थात् बाहर से अन्तर्मुख होना। चित्त की वृत्तियों द्वारा हम स्थूलता की ओर जाते हैं, अर्थात बहिर्मुख होते है। आत्मत्तत्व से प्रकाशित चित्त अहंकार रूप वृत्ति द्वारा, अहंकार इन्द्रियों और तन्मात्राओं रूप वृत्तियों द्वारा, तन्मात्राएं सूक्ष्म और स्थूलभूत और इन्द्रियां विषयों की वृत्तियों द्वारा बर्हिमुख हो जाती है। जितनी मात्रा बढ़ती जाएगी और उसके विपरीत वृत्तियां जितनी अंतर्मुख होती जायेगी, उतना ही रज और तम के तिरोभावपूर्वक सत्वका प्रकाश बढ़ता जाएगा। जब कोई भी वृत्ति न रहे तब शुद्ध परमात्मस्वरूप शेष रह जाता है। इस परमात्मस्वरूप अवस्था को प्राप्त करने हेतु योग के तीन अर्तविभाग किये जा सकते हैं ये तीन अंर्तविभाग निम्नलिखित

(1) ज्ञान (सांख्य) योग

(2) उपासना (भक्ति) योग

(3) कर्म योग

भौतिक पदार्थो को जान लेना अर्थात, सांसारिक ज्ञान और विज्ञान ज्ञानयोग नहीं है, बल्कि तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) और उनसे बने हुए सभी पदार्थो से परे अर्थात् स्थूल–सूक्ष्म और कारण शरीर तथा स्थूल सूक्ष्म और कारण जगत् का संशय विपर्यय रहित पूर्णज्ञान हो जाना **''ज्ञान योग''** कहलाता है। इस ज्ञान योग की प्राप्ति हेतु उपासना योग (भक्ति) की आवश्यकता होती है। उपासना योग में चित्त की समस्त वृत्तियों को सब ओर से हटाकर

चित्त को किसी विषय ध्येय (भक्ति का विषय या लक्ष्य) पर ठहरा सकना **भक्ति** या **''उपासना योग''** कहलाता है। यह **''उपासना योग''** बिना कर्म के प्राप्त नहीं हो सकता है अतः जगत् के कर्मो को कोल्हू के बैल के सदृश करते रहना कर्म योग नही है बल्कि अनासक्त या निष्काम भाव से किया जाने वाला कर्म कर्मयोग होता है। इस प्रकार ये तीनों अंर्तविभाग योग रूपी वृत्त की रूप भेद कड़िया ही है। इन तीनों को दो प्रमुख भेदो में भी विभाजित किया जा सकता है। ये है

(1) सांख्य (2) योग

जहाँ भक्ति और कर्म पर अधिक जोर दिया जाता है वह योग निष्ठा कहलाती है तथा जहां ज्ञान को प्रधानता दी जाती है उसे सांख्य निष्ठा कहते है। इसे श्रीमद्भगवत गीता में भी स्पष्ट किया गया है कि इस जगत् में कल्याण (योग) की प्राप्ति हेतु दो प्रकार की निष्ठायें हैं –

लोके अस्मिन् द्विविधा निष्ठाा पुरा प्रोक्ता मयानध।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।

ये दोनों निष्ठाायें फल की दृष्टि से समान है अर्थात तीनों योगों का अंतिम फल **परमात्म तत्व** की प्राप्ति पर ही पूर्ण होता है। इसे भी स्पष्ट निर्देशित कर दिया गया है।

सांख्ययोगौ पृथ्गबालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।

इस प्रकार योग का अंतिम लक्ष्य अंतिम फल या अंतिम परिणाम एक ही है। इसी कारण एक तत्व (परमात्य तत्व) का अभ्यास योग है।

2.4.2 योग की परिभाषाएँ

वेद, उपनिषद, स्मृति, पुराण सूत्रों आदि में योग का साहित्य अत्यंत विशाल है। इन ग्रन्थों में योग को दृष्टिकोण की भिन्नताओं के कारण अलग अलग परिभाषित किया गया है। इन परिभाषाओं को इनकी व्याख्याओं के आधार पर निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 02) के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है–:

योग की व्याख्यायें

(1)	(2)	(3)
एक अवस्था या स्थिति के रूप में	एक साधना प्रक्रिया के रूप में	अवस्था एवं प्रक्रिया के सम्मिलित रूप में।

(तालिका क्रमांक 02)

(1) अवस्था या स्थिति के रूप में

(i) कठोपनिषद् (2.3.11) के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से योग को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

तां योगमिति मन्यंते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाव्ययै ।।

अर्थात् पंच इंद्रियों मन, एवं बुद्धि की स्थिर अवस्था को योग कहते हैं। इसको प्राप्त करने पर मनुष्य संपूर्ण रीति से दोष रहित हो जाता है।

(ii) मैत्रायणी उपनिषद् के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से योग को परिभाषित किया गया है।

एकत्वं प्राणमनसेरिंद्रियाणां तथैव च।
सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते।।

अर्थात योग वह अवस्था है जिसमें मन, विचारों से रहित होकर इंद्रियों,मन और प्राणों की एकता हो जाती है।

(2) साधना प्रक्रिया के रूप में

(i) महोपनिषद् में योग की व्याख्या साधना प्रक्रिया के रूप में की गई है

मनः प्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते।

अर्थात मन को शांत करने के लिए जो भी अन्यान्य उपाय किये जाते हैं (शारीरिक तथा मानसिक) उन सब का अन्तर्भाव योग में किया जा सकता है।

(ii) योगी याज्ञवल्कय स्मृति में योग की व्याख्या संयोग के रूप मे इस प्रकार है।

संयोगेा योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मनोः ।

अर्थात जीवात्मा एवं परमात्मा के संयोग की स्थिति योग है। यह परिभाषा योगदर्शन की अपेक्षा वेदांत के ज्यादा निकट है।

(iii) श्रीमद्भगवत गीता में योग की व्याख्या संयोग तथा वियोग दोनो अर्थो में प्राप्त होती है।

तं विद्याद् दुःखसंयोग वियोगं योगसंज्ञितम् ।

स निश्चयेन योत्कव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा।।

अर्थात दुःख रूप संसार के संयोग से रहित वियोगं जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये वह योग न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साह युक्त चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्त्तव्य है।

(3) अवस्था एवं प्रकिया के सम्मिलित रूप में :–

(i) योगसूत्र में सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा अवस्था एवं प्रक्रिया दोनों के सम्मिलित रूप में इस प्रकार है–

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

अर्थात चित्त की वृत्तियों को रोकना (निरोध) योग है। चित्त की वृत्तियाँ जो बर्हिमुख होकर सांसारिक विषयों में लग जाती है उन्हें अर्न्तमुख करके पुनः चित्त में लीन कर देना योग है।

(ii) श्रीमद्भगवतगीता के अनुसार योग को इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

(क) योगस्थः कुरूकर्माणि संगंत्यकत्वा धनंजय।

सिद्ध सिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

अर्थात हे धनंजय (अर्जुन) आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्त्तव्य कर्मो को कर, समत्व (ही) योग कहलाता है। यहाँ समत्व का अर्थ जो कुछ भी कर्म किया जाय, उसके पूर्ण होने और न होने में तथा उसके फल में समभाव रहने का नाम (समत्व) है।

(ख) बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

अर्थात समबुद्धि युक्त (पुरूष) पुण्य और पाप दोनो को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात उनसे मुक्त हो जाता है। इससे (तू) समत्वरूप योग में लग जा, (यह) समत्वरूप योग (ही) कर्मो में कुशलता है अर्थात कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।

इस प्रकार अनेक अन्य प्रमाणिक ग्रंथों में और भी योग की परिभाषायें प्राप्त होती है। यहां सम्यक् व्याख्या करने की दृष्टि से उपरोक्त महत्वपूर्ण परिभाषाओं को वर्णित किया गया है। इन सबमें एक बात स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है कि योग एक ऐसी प्रक्रिया है, जो साधक को अज्ञान एवं दुःखों से निवृत करराकर जीवन के परम् पुरूषार्थ की प्राप्ति

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3. योग का अर्थ बतलाइये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4 योग की किसी एक परिभाषा को समझाइये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2.5 इकाई 6 योग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

2.5.1 योग का द्वैतवाद

दार्शनिक जगत् में यह प्रश्न सदैव उठता है कि सृष्टि बनने में कितने तत्वों की आवश्यकता है ? एवं वे

आवश्यक तत्व कौन कौन से है। हरेक दर्शन अपने सत्ताशास्त्र के अनुसार अपना सिद्धांत प्रस्तुत करता है। योग दर्शन का सत्ताशास्त्र सांख्य दर्शन के सत्ताशास्त्र पर अवलम्बित है। जहां वेदांत दर्शन सृष्टि के मूल में **एक तत्व** का सिद्धांत प्रस्तुत करता है तो वही **न्याय, वैशेषिक, जैन** आदि दर्शन **बहुतत्ववाद** के समर्थक है उनकी दृष्टि में यह सृष्टि अनेक तत्वों (पदार्थ) से मिलकर बनी है। इन दोनो सिद्धांतो से पृथक सांख्य एवं योग दर्शन अपना द्वैतवाद का सिद्धांत प्रस्तुत करते है। इनके अनुसार सृष्टि के दो मूल तत्व है।

ये दो मूल तत्व (1) प्रकृति तथा (2) मूल तत्व पुरूष (जीव) है। ये दोनों तत्व ''अनादि एवं ''अनन्त'' है। तथा ''नित्य'' है। अर्थात जिनका कभी क्षय नही होता है। इनमें पुरूष (जीव) नित्य तत्व है तथा असंख्य है तथा अनादि अनन्त एवं शाशवत है। दूसरा तत्व प्रकृति या जड़ तत्व है इसे प्रधान, अव्यक्त या अलिंग नाम से भी जाना जाता है।

इन दोनो में से किसी एक तत्व से सृष्टि का निर्माण संभव नहीं है। क्योकि पुरूष चेतन तो है किन्तु अपरिणामी अर्थात परिवर्तन से रहित है तथा प्रकृति जड़ है तथा सतत् परिणामनी है। यही दो तत्व योग दर्शन को मान्य है इस कारण योग दर्शन **द्वैतवादी दर्शन** है। इसे महर्षि पतंजलि योग सूत्र में स्पष्ट कर देते है। सृष्टि प्रक्रिया में स्वशक्ति अर्थात **प्रकृति** (तथा उससे उत्पन्न बुद्धि मन इत्यादि तत्व) और स्वामी शक्ति अर्थात **पुरूष** इन दोनों मूलतत्वों को अपने स्वरूप को उपलब्ध करा देना यही संयोग का हेतु है। इस संयोग का कारण है अविद्या योग साधना से अविद्या नष्ट होने पर संयोग के कारण का ज्ञान होते ही संयोग का आभाव हो जाता है। यह आभाव के ज्ञान की स्थिति **''हान''** है। योग दर्शन हान अर्थात **''कैवल्य''** की स्थिति को दोनों मूलतत्वों के अपने स्वरूप में पृथक पृथक विद्यमान रहने को मानता है।

2.5.2 योग दर्शन और त्रिगुण सिद्धांत

योग दर्शन द्वैतवादी दर्शन है इसके दो तत्वों में से एक प्रकृति तत्व सतत् परिणामशील रहता है। मूल अवस्था में प्रकृति तीन गुणों **सत्व रज,** एवं **तम** से युक्त रहती है। ये तीन गुण जब अपनी अपनी मूल स्थिति में होते है तो इस अवस्था को प्रकृति की लय अवस्था कहते है इस अवस्था में प्रकृति अव्यक्त स्थिति में रहती है। जब प्रकृति के सान्धिय में चेतन पुरूष आता है तो प्रकृति के इन तीन गुणों की लय अवस्था भंग हो जाती है और ये तीनों विभिन्न परिणामों में व्यक्त होने लगते है यहीं से प्रकृति अपने को चेतनवत् व्यक्त करने लगती है। प्रकृति चेतन के सांन्धिय में प्रथम परिणाम के रूप में अपनी त्रिगुणात्मक प्रकृति के संतुलन को न बनाये रखने के कारण लिंगमात्र (महत्तत्व, बुद्धि या महत्) में परिवर्तित हो जाती है। इसके बाद सृष्टि का सतत् परिणाम आगे बढ़ता है और महत्त से त्रिगुणात्मक अहंकार उत्पन्न होता है। इस त्रिगुणात्मक अहंकार में से सात्विक अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियां एवं पांच कर्मेन्द्रिया तथा मन ऐसे कुल ग्यारह तत्व निर्माण होते है। तामस् अहंकार से पांच तन्मात्राएँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध उत्पन्न होती है। इन पांच तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु तेज, जल एवं पृथ्वी ये पंच महाभूत निर्माण होते है।

2.5.3 योग दर्शन में सृष्टि विचार

योग दर्शन द्वैतवादी दर्शन है। इस द्वैतवादी सिद्धांत के अनुसार सृष्टि में पुरूष और प्रकृति को छोड़कर अन्य कोई तत्व नहीं है। परन्तु इस पर यह प्रश्न निर्माण होता है कि यदि पुरूष अकर्त्ता है और त्रिगुणों से परे है तथा प्रकृति अचेतन है तो फिर ये दोनों मूलतत्व अपने आप में अपने स्थान पर ही रह जायेगें सृष्टि का आरंभ कैसे होगा ? इस प्रश्न के उत्तर में योग का कहना है कि यद्यपि दोनों मूलतत्व अपने आप में सृष्टि को बनाने में असमर्थ है फिर भी उनके अनादि संयोग के कारण दोनों के गुण एक दूसरे पर आरोपित हो जाते है। जैसे शीशा सूर्य की किरण परावर्तित करके स्वयं प्रकाशवान जैसा लगता है वैसे अचेतन प्रकृति पुरूष का प्रतिबिम्ब ग्रहण करके मानों चेतन जैसा बन जाती है और सृष्टि की रचना करती है इसके साथ पुरूष प्रकृति के (अर्थात बुद्धि के) अशुद्धियों से (चित्तवृत्तियों से) आरोपित होकर स्वयं अपने को सुखी दुखी मानने लगता है। इस प्रकार वह अकर्त्ता होते हुए भी भोक्ता बन जाता

है। पुरूष और प्रकृति का संयोग वास्तविक नहीं बल्कि काल्पनिक होता है। इसका कारण है **अविद्या या अज्ञान** यह अनादि है। योग के अभ्यास से अविद्या नष्ट होकर विवेक ज्ञान होने से पुरूष और प्रकृति का संयोग खत्म हो जाता है तब पुरूष प्रकृति से मुक्त हो जाता है। परंतु अन्य पुरूषों के भोग एवं अपवर्ग के लिए प्रकृति संसार की रचना करती रहती है।

2.5.4 योग दर्शन में मन–शरीर संम्बन्ध

योग दर्शन में तीन अन्तिम सत्तायें मानी गई है ये हैं – (1) ईश्वर (2) पुरुष और (3) प्रकृति। इनमें पुरुष अनन्त है, प्रकृति एक है। दोनों अनादि है, किन्तु एक चेतन है, दूसरा जड़। चेतन पुरुष निष्क्रिय, अपरिणामी, नित्य, सर्वव्यापी अनेक है, वही प्रकृति त्रिगुणात्मक एक परिणामी सक्रिय है। यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् त्रिगुणात्मक प्रकृति का व्यक्त रूप है। ईश्वर के सान्निध्य मात्र से प्रकृति की साम्य अवस्था भंग हो जाती है और अव्यक्त प्रकृति व्यक्त (दृश्य) प्रकृति होने लगती है। बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रियाँ, सूक्षम और स्थूल विषय तथा समस्त प्रपंचात्मक जगत् प्रकृति की ही अभिव्यक्तियाँ है। योग दर्शन में मन–बुद्धि–अहंकार इन तीनों को ही चित्त माना गया है। देंखें चित्र क्र. 1

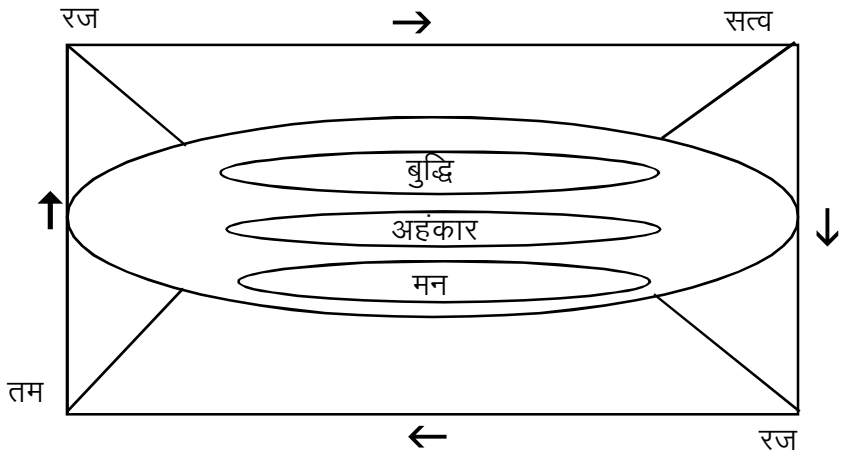

त्रिगुणात्मक प्रकृति (चित्र क्रमांक–01)

मन, अहंकार एवं बुद्धि ये तीनों स्वयं में जड़ है। अतः चित्त भी स्वयं में जड़ है। चित्त में निरंन्तर परिणाम होते रहते है। पुरुष अपरिणामी, निष्क्रिय होते हुए भी जब अज्ञान के कारण चित्त के साथ तादात्मय का भ्रम हो जाने पर अपने को ही **परिणामी** समझने लगता है, तब इस अवस्था में उसे बद्धजीव कहते हैं।

चित्त त्रिगुणात्मक होते हुए भी सत्व प्रधान है, अर्थात उसमें रज और तम अल्प मात्रा में तथा निर्बल स्थिति में रहते है। सत्व प्रधान एवं आत्मा के निकट होने से चित्त आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होता है उदाहरणार्थ :– जैसे दीपक दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर दर्पण को प्रकाशित तो करता है साथ ही अन्य सभी प्रतिम्बिबित विषयों को भी प्रकाशित करता हैं

ठीक इसी प्रकार सात्विक चित्त निर्मल (दर्पणवत्) होने के कारण '' पुरुष'' (चेतन) का प्रतिबिम्ब उसे प्रकाशित कर चित्त के अन्य समस्त विषयों को भी प्रकाशित करता है। इसी कारण आत्मा को विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। चित्त सतत् विषय –सम्पर्क के कारण विषयाकार होता रहता है। चित्त के विषयाकार होने को ही चित्तवृत्ति कहते है। ये चित्तवृतियाँ सतत् परिवर्तनशील होने के कारण निरंन्तर चित्त में धारारुप से प्रवाहित होती रहती है इस कारण अपरिणामी, निष्क्रिय अविकारी पुरुष भी प्रतिबिम्बित होने के कारण परिणामी, क्रियाशील तथा विकारी प्रतीत होने लगता

है। जैसे जल तरंगों की गति के कारण स्थिर चन्द्रमा भी चंचल प्रतीत होता है। चित्त की वृत्तियों प्रमाण, विपर्यय, विकल्प एवं निद्रा को पुरुष अपने में मान उनके अनुरुप अपने को शान्त, धोर मूढ़ समझ सुखी दुःखी होने लगता है यही **अज्ञान या भ्रम** है।

प्रकृति विकास क्रम में प्रथम विकार महत, बुद्धि या चित्त है। जिससे दो अलग अलग समानान्तर प्रवाह विकसित होते रहते है।

(1) अहंकार, मन, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ व पंच कर्मेन्द्रियाँ।

(2) महत् से पंचतन्मात्रा और पंचतन्माआओं से पंचमहाभूत तथा पंचमहाभूत से समस्त स्थूल जगत्। ये **दोनों प्रवाह प्रकृति की सतत् परिणामी** होने के गुण की ही **धारायें** है।

किन्तु अज्ञानवश पुरुष अपने आपको मन, इन्द्रिय, शरीर आदि तथा चित्त के परिणामों को अपने परिणाम समझ कर सुख–दुःख और मोह को प्राप्त होता रहता हैं। यही आत्मा का बन्धन है क्योंकि पुरुष चित्त की समस्त अवस्थाओं को अपनी अवस्था समझ बैठता है। इन्द्रियों और शरीर की क्रियाओं को स्वयं की क्रिया समझने लगता है।

चित्त और मन अचेतन और जड़ होते हुए भी अत्यन्त **सूक्ष्म** है, इसी सूक्ष्म चित्त व मन में हमारे जन्मजन्मांतरों के कर्मो की वासनाओं के संस्कार विद्यमान रहते है और जीव के साथ एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में कर्मानुसार जाते रहते है। शरीर **पंच महाभूतों** से निर्मित होता है जो पंचतन्मात्राओं से उत्पन्न होते है। महत् से अहंकार से–मन–से पंच ज्ञानेन्द्रियां और पंच कर्मेन्द्रिय की अभिव्यक्ति होती है। शरीर एवं मन क्रमशः जड़ प्रकृति की स्थूल व सूक्ष्म अवस्थायें हैं। अतः मानसिक क्रियाओं द्वारा शारीरिक क्रियाएं प्रभावित होती है। इसी प्रकार शारीरिक अवस्थाओं का प्रभाव मन पर निश्चित रुप से पड़ता है।

वस्तुतः जब दोनों एक ही जड़–तत्व की अभिव्यक्तियां हैं तो उनके सम्बन्ध को समझने में कोई कठिनाई ही नहीं है। इनका पारस्परिक प्रभाव योग के द्वारा स्पष्ट ही है। इतना अवश्य है कि सूक्ष्म अधिक शक्तिशाली तथा अधिाक क्षमतावान् तथा सम्भाव्यता वाला होता है। इसके कार्य बिना शरीर की सहायता के भी सम्पादित होते है। चित्त की ऐसी **विलक्षण शक्ति** मानी गई है कि वह शरीर को जिस प्रकार से चाहे उस प्रकार से चला सकता है। वैसे तो मन और शरीर का अन्योन्याश्रय सम्बंध है ही, किन्तु **मन सूक्ष्म** होने के कारण स्वतंत्र रुप से भी क्रियाशील होता है। यह सब क्रियाशीलता बिना चेतन के सान्निध्य के सम्भव नही है। स्वयं में अपरिणामी होते हुए भी वह समस्त विश्व के इस विकास का **निमित्त कारण** होता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5. योग दर्शन के अनुसार द्वैतवाद क्या है ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

6. त्रिगुण का सिद्धांत समझाइये ?

_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____

2.6 सारांश

इस खंड के अध्ययन के उपरान्त आपने देखा कि योग विज्ञान की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि क्या है। हमने देखा कि जीवन की कठिनाइयों और अशांति के उपाय स्वरुप चिन्तनशील मानव ने ऐकान्तिक एवं आत्यान्तिक शान्ति के निमित्त से जिस शास्त्र का सजृन (उद्‌भावन) किया उसे हम दर्शनशास्त्र के नाम से जानते है। विविध साक्षात्कारों एवं दृष्टियों के कारण कई दर्शन सिद्धांत उत्पन्न हुए उनमें योग दर्शन भी अपना दृष्टिकोण रखता है। यह दर्शन सैद्धांतिक कम व्यवहारिक ज्यादा है।

अन्य दर्शनों की भॉति योग दर्शन भी दर्शानों के प्रतिपाद्य विषयों – **हेय, हेय–हेतु, हान** और **हानोपाय** के लिए अपनी तकनीकें एवं मान्ताएं प्रस्तुत करता है। योग दर्शन सांख्य दर्शन की आधारभूमि पर खड़ा है। साथ ही वह अपनी विशेषता भी रखता है ईश्वरवाद उसकी मूल विशेषता है। योग दर्शन जीव तत्व (आत्मतत्व) ईश्वर तत्व (परमात्म तत्व) तथा प्रकृति तत्व जड़ तत्व पर अपना सिद्धांत प्रस्तुत करता है।

योगदर्शन अपने पदार्थ विचार में ''चित्त'' पर बृहत प्रकाश डालता है। उसके स्वरुप उसकी कार्यप्रणाली का पर्याप्त विवेचन योग दर्शन करता है। योगदर्शन अपने कर्मविचार के अन्तर्गत बन्धन का कारण कर्म और उनके चार भेदों पर प्रकाश डालता है। योग दर्शन अपने मोक्ष विचार के अन्तर्गत कर्माशय के निर्बोज होने तक की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है तथा वृत्तियों के निरोध को इस हेतु आवश्यक मानता है।

योग के अनेक अर्थ लगाये जाते है। कहीं समाधि के अर्थ में कहीं संयोग तो कहीं मिलाप के अर्थ में इसका विवेचन किया जाता है। योग के अन्तः भेद भी किये गये है। ये है – ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग। योग को समझाने हेतु उसे परिभाषित भी किया गया है। जो योग को (1) अवस्था या स्थिति (2) साधना प्रक्रिया एवं (3) अवस्था एवं प्रक्रिया का सम्मिलन रुप के अन्तर्गत परिभाषित किये जाते है।

योग दर्शन अपनी सैद्धांतिक पृष्ठभूमि को द्वैतवाद के आधार पर खड़ा करता है। तथा सांख्य के अनुरुप त्रिगुणात्मक सिद्धांत को अपने सृष्टि विचार के अन्तर्गत प्रस्तुत करता एवं मान्यता देता है। योग दर्शन बड़े ही स्पष्ट तरीके से मन–शरीर सम्बन्ध की विवेचना भी प्रस्तुत करता है जिससे जीवन व्यापार समझने में सहायता प्राप्त होती है।

सारांशतः योग दर्शन की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि अत्यंत व्यावहारिक एवं **जीवन जीने की एक कला** के रुप में बड़े सरल ढंग से अपने सभी सिद्धांत प्रस्तुत करने में सक्षम है। तथा इसके सिद्धांत व्यवहार में अनुभव जन्य है। इस कारण आज यह दर्शन सबसे लोकप्रिय एवं सभी दर्शनों को कर्मपक्ष हेतु सहायता भी करता है।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 दर्शनों की प्रमुख समस्यायें क्या है ?

उ. सभी दर्शनों की प्रायः एक समान समस्यायें है। उनके निदान के रास्ते एवं साधन भले अलग है किन्तु लक्ष्य भी करीब समान ही है।

दर्शनों की निम्नलिखित प्रमुख समस्यायें है।

(1) **हेय** :– दुःख का वास्तविक स्वरुप क्या है, जो हेय अर्थात त्याज्य है।

(2) **हेय–हेतु** :– दुःख कहाँ से उत्पन्न होता है, इसका वास्तविक कारण क्या है, जो ''हेय'' अर्थात त्याज्य दुःख का वास्तविक हेतु है।

(3) **हान** :– दुःख का नितान्त अभाव क्या है, अर्थात हान किस अवस्था या स्थिति का नाम है।

(4) **हानोपाय** :– हान का उपाय हानोपाय है अर्थात् नितान्त दुःखनिवृत्ति का साधन क्या है ?

प्र.2 योग दर्शन के अनुसार कर्म की अवधारण समझाइये ?

उ. सभी दर्शनों में कर्म सिद्धांत पर विचार किया गया है। वस्तुतः कर्म हमारे जीवन का तथा दर्शन का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है। संसार की प्रत्येक वस्तु में ' रजोगुण ' रहता ही है। रजोगुण का स्वभाव है क्रियाशील होना। अतः प्रत्येक वस्तु में किसी न किसी रुप में क्रिया रहती ही है।

योग दर्शन ने अपने कर्म सिद्धांत में कर्म के चार भेद किये है (1) कृष्ण कर्म (2) शुक्ल कुष्ण कर्म (3)शुक्ल कर्म तथा (4) अशुक्ल अकृष्ण कर्म। योग दर्शन की मान्यता है कि कर्म करने के उपरांत कर्म संस्कार (कर्माशय) अवश्य बनता है। उसी कर्माशय को योग साधन द्वारा निर्बीज करना कर्मयोग है।

प्र.3 योग का अर्थ बतलाइये ?

उ. योग का शाब्दिक अर्थ विभिन्न आधारों पर व्यवहृत है व्याकरण की दृष्टि से ''युज'' धातु के बाद करण और भाववाच्य में ''घञ'' प्रत्यय लगाने से बनता है। पाणिनि के गणपाठ में तीन ''युज धातु'' है। इनसे योग के तीन अर्थ समाधि, संयोग और मिलाप लिये जाते है। समाधि बोधक 'युज' धातु से ही यहां योग शब्द का उद्भव माना गया है। योग शब्द भारतीय संस्कृति में अपने शाब्दिक अर्थ से कहीं ज्यादा व्यापकता लिए हुये है। योग दर्शन के प्रर्वतक महर्षि पंतजलि योग को चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था कहते है।

प्र. 4 योग की किसी एक परिभाषा को समझाइये ?

उ. अवस्था एवं प्रक्रिया के सम्मिलित रुप में

(1) योगसूत्र में सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा अवस्था एवं प्रक्रिया दोनों के सम्मिलित रुप में इस प्रकार है

योगश्चितवृत्ति निरोधः

अर्थात चित्त में उठने वाली वृत्तियों का निरोध करना उन्हें शांत करना योग है।

(2) श्रीमद्भागवत गीता के अनुसार

योगस्थः कुरुकर्माणि संगंत्यकत्वा धनंजय।
सिद्ध सिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

अर्थात् आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मो को कर, यह समत्व ही योग है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

अर्थात समत्व बुद्धि युक्त कर्म कर्मो में कुशलता प्रदान करते है कर्मो में कुशलता ही कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।

प्र. 5 योग दर्शन के अनुसार द्वैतवाद क्या है ?

उ. योग दर्शन का द्वैतवाद का सिद्धांत सांख्य दर्शन के सिद्धांत की पृष्ठभूमि पर ही आधारित है। ये सृष्टि रचना

में दो मूल तत्वों को मानते है (1) प्रकृति एवं (2) पुरुष (जीव) महर्षि पतंजलि इस द्वैतवाद को स्पष्ट करते है कि सृष्टि प्रक्रिया में स्वाशक्ति अर्थात प्रकृति (तथा उससे उत्पन्न बुद्धि मन इत्यादि तत्व) और स्वामी शक्ति अर्थात पुरुष इन दोनों मूलतत्वों को अपने स्वरुप को उपलब्ध करा देना यही संयोग का हेतु है। इस संयोग का कारण है अविद्या। अविद्या के योगसाधना द्वारा नष्ट होने पर संयोग के कारण का ज्ञान होते ही संयोग का अभाव हो जाता है। यह अभाव के ज्ञान की स्थिति **''हान''** है। योग दर्शन ''हान'' अर्थात कैवल्य की स्थिति को दोनों मूलतत्वों के अपने स्वरुप में पृथक विद्यमान रहने को मानता है।

प्र. 6 त्रिगुण का सिद्धांत समझाइयें ?

उ. योग दर्शन का तत्व विचार द्वैतवाद को मानता है। द्वैतवाद के अन्तर्गत दो तत्व प्रकृति एवं पुरुष मूल तत्वों में माने गये है। प्रकृति इस दृश्य जगत् की कारणभूता है। प्रकृति को त्रिगुणात्मिका माना जाता है, ये त्रिगुण है **सत्व रजस** एवं **तमस्।** इन तीन गुणें की **साम्यावस्था** को प्रकृति की प्रलय अवस्था कहते हैं तथा लय की स्थिति में पुरुष के सानिध्य के कारण साम्यावस्था का भंग होना प्रकृति का सृजन है। चूंकि यह सारा दृश्य जगत् प्रकृति का परिणाम हैं इस कारण जगत के प्रत्येक तत्व में तीन गुण सत्व, रज, एवं तम किसी न किसी अवस्था में अवश्य रहते है। इस कारण प्रकृति में जड़ चेतन जो कुछ भी विद्यमान है वह सब उन तीन गुणों के सम्मिश्रण का ही परिणाम होता है। यही योग दर्शन का त्रैगुण्य सिद्धांत है।

2.8 उपयोगी संदर्भ गंथ

(1) भारतीय दर्शन — **प्रो. बलदेव उपाध्याय (पद्मभूषण)**
प्रका. शारदा मन्दिर 36–13
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी

(2) दर्शन — **डॉ. देवराज**
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली –2

(3) सांख्यकारिका — **डॉ0 बैजनाथ पाण्डेय**
भारतीय विद्या प्रकाशन पो. बा. नं. – 1108
कचौड़ी गली, वाराणसी – 221001

(4) श्रीमद्भागवतगीता — **गीता प्रेस,**
गीता प्रेस गोरखपुर संख्या 2052 ,273005

(5) योग एवं आयुर्वेद — **सत्येन्द्र प्रसाद मिश्रा**
चौरवम्बा संस्कृत संस्थान
पो. बाक्स – 1139 वाराणसी

(6) भारतीय दर्शन — **उमेश मिश्र**
प्रकाशन ब्यूरो
सूचना विभाग उ.प्र. सरकार, लखनऊ

(7) योग दर्शन — **डॉ. संपूर्णानन्द**
हिन्दी समिति ग्रन्थमाला संख्या – 122
सूचना विभाग उ.प्र. सरकार, लखनऊ

(8) महर्षि पतंजलि कृत योग दर्शन — **हरिकृष्ण दास गोयन्दका**
गीता प्रेस गोरखपुर (उ.प्र.)

(9) योग और भारतीय दर्शन — **वर्नियर**
मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली

(10) तंत्र क्रिया और योगविद्या — **स्वामी सत्यानन्द सरस्वती**
बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार

(11) भक्तिसागरादि — **स्वात्माराम योगेन्द्र**
खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बम्बई

(12) योग दर्शन — **परमहंस निरंजनानन्द**
प्रकाशक श्री पंचदशनाम पहमहंस
अलखबाड़ा पनिया पगार, रिखिया
देवधर– बिहार

खण्ड 3 : योग विज्ञान के प्रकार

इकाई 7

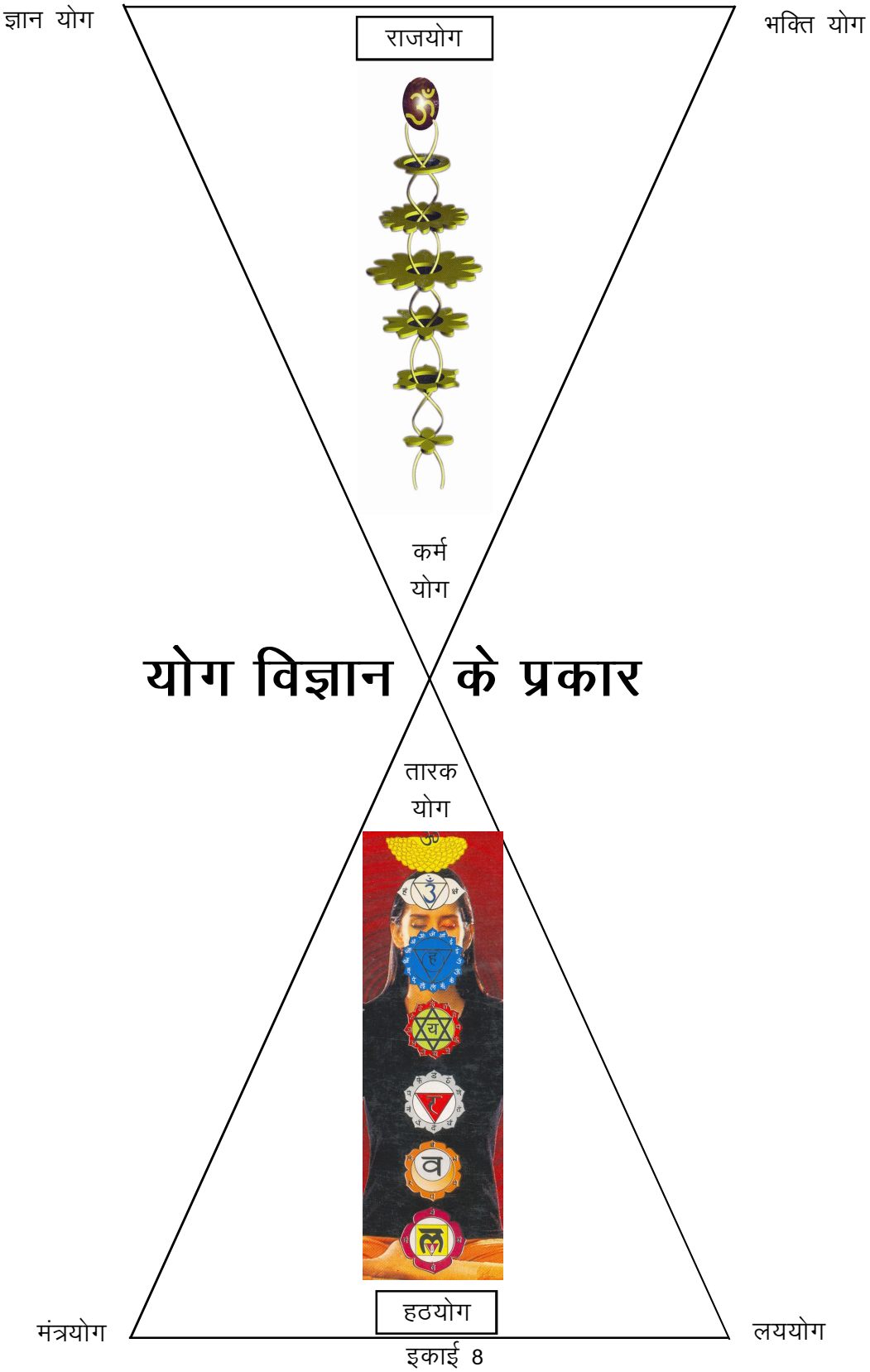

इकाई 8

खण्ड – 3 योग विज्ञान के प्रकार

प्रश्न पत्र प्रथम ''योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरुप'' के अध्ययन हेतु खंण्ड 3 **''योग विज्ञान के प्रकार''** को दो इकाईयों में विभाजित किया गया है। इनमें (1) इकाई 7 **राजयोग** (कर्म, भक्ति, एवं ज्ञानयोग के संदर्भ में) तथा (2) इकाई 8 **हठयोग** (मंत्र लय एवं तारक योग के संदर्भ में) को सम्मिलित किया गया है।

खण्ड संरचना

3.0 प्रस्तावना 53

3.1 उद्देश्य 53

3.2 विषय प्रवेश 53

3.3 इकाई – 7 राजयोग (कर्म, भक्ति एवं ज्ञानयोग के संदर्भ में) 54

3.3.1 राजयोग का स्वरुप

3.3.2 कर्मयोग का स्वरुप

3.3.3 भक्ति योग का स्वरुप

3.3.4 ज्ञानयोग का स्वरुप

3.4 इकाई – 8 हठ्योग (मंत्र, लय एवं तारक योग के संदर्भ में) 69

3.4.1 हठयोग का स्वरुप

3.4.2 मंत्र योग का स्वरुप

3.4.3 लय योग का स्वरुप

3.4.4 तारक योग के संदर्भ में

3.5 सारांश 80

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर 81

3.7 उपयोगी संदर्भ गंथ 84

3.0 प्रस्तावना

प्रथम प्रश्न पत्र के अन्तर्गत इकाई – 7 एवं इकाई – 8 का अध्ययन इस तृतीय खंण्ड में किया जाना है। इसके पूर्व आपने प्रथम खण्ड में योग विज्ञान की संकल्पना एवं द्वितीय खण्ड में योग विज्ञान के सिद्धांतों का भलीभाँति अध्ययन कर लिया है।

इकाई 7 को पढ़ने के बाद आप सैद्धांतिक रुप में यह जान सकेंगे कि योग के कितने प्रकार है इसमें राजयोग का स्वरूप क्या है। राजयोग के अन्तर्गत ही कर्मयोग, भक्ति योग एवं ज्ञान योग का स्वरुप क्या हैं, यह जानकर आप योग साधना में अपने अनुरुप **योग साधना का प्रकार** चुन सकनें में सक्षम होंगे साथ ही योग के अन्य प्रकार उसमें किस प्रकार का समन्वय एवं सहायक होगे यह भी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

इकाई – 8 के पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे कि हठ्योग का स्वरुप क्या है। हठ्योग के साथ ही साथ आप मंत्र योग, लययोग, एवं तारक योग का स्वरुप क्या है। यह जानकर आप योग साधना के व्यवहारिक पक्ष पर भी उत्तर सकने में सक्षम हो सकेंगे। तथा व्यवहारिक प्रयोग पर भी अपनी इच्छा एवं आवश्यकता के आधार पर व्यवहारिक साधना को मूर्त रुप में ला सकते है।

3.1 उद्देश्य

इकाई 7 में राजयोग (कर्म, भक्ति एवं ज्ञानयोग के संदर्भ)तथा इकाई 8 में हठ्योग (मंत्र, लय एवं तारक योग के संदर्भ में अध्ययन द्वारा निम्नलिखित बिन्दुओं को विस्तार से आत्मसात करवाना –

- योग के विविध प्रकारों का आशय एवं स्वरुप का ज्ञान प्राप्त करवाना।
- राजयोग का आशय एवं इसके अन्तर्गत कर्मयोग, भक्ति योग, एवं ज्ञान योग के स्वरुप का विस्तृत अध्ययन करवाना।
- हठ्योग का आशय एवं इसके अन्तर्गत मंत्रयोग, लययोग, एवं तारक योग के स्वरुप का विस्तृत अध्ययन करवाना
- इन दोनों इकाईयों में सभी प्रचलित महत्वपूर्ण योगों का समन्वय कर अन्य योगमार्गो का स्वयं आप में स्वयं समन्वयन कर सकने की योग्यता विकसित करवाना।
- योग साधना के मनोनुकूल मार्ग को चुनकर योग साधना के क्षेत्र में प्रवेश करने हेतु प्रेरित करवाना भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।
- इन दो इकाई के अध्ययन के माध्यम से आप में योग विज्ञान विषय के किसी भी क्षेत्र के साधकों के प्रश्नों के समाधान कर सकने की योग्यता अर्जित करवाना।

3.2 विषय प्रवेश

योग दर्शन के सैद्धांतिक विवेचन में हमने देखा कि योग दर्शन त्रिगुण के सिद्धांत को मान्यता देता है। त्रिगुण सिद्धांत के अनुसार संसार के समस्त व्यक्तियों का व्यक्तित्व भी इन्हीं तीनों गुणों (सात्विक– राजसिक एवं तामसिक) के अनुरुप होते है। तथा यह व्यक्तित्व इन गुणों की मात्रा देश, काल एवं अवस्था के अनुरुप विभिन्न स्वरुप में दिखाई देते है योग दर्शन का उद्देश्य जाति, धर्म, अवस्था आदि के भेद से दूर मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए साधना मार्ग की प्रक्रिया का निर्देशन करना है। यह साधना मार्ग व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा उसे प्राप्त परिस्थितियों के अनुरुप भिन्न भिन्न होना चाहिए। इसी कारण योग साधना पद्धति के विविध मार्ग विकसित हुऐ जिससे हरेक व्यक्ति अपने गुणों के अनुरुप योग मार्ग का चयन कर सकें।

जब हम योग शब्द का प्रयोग एक उपासना पद्धति के अर्थ में करते हैं तब यह प्रश्न निर्माण होता है कि क्या योग एक है कि अनेक ? क्या उसके जो विभिन्न प्रकार माने जाते है वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न या स्वतंत्र है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वास्तव में योग एक ही है, अनेक नहीं। अपितु उसका आरम्भ और अंतिम स्थिति सभी प्रकारों में एक समान ही है, इसके बावजूद भी व्यावहारिक साधना में तथा उपासना के प्रकारों में लोगों की प्रवृत्तियाँ भिन्न – भिन्न होने से कुछ विविधता अवश्य बन जाती है। उदाहरार्थ खाद्य पदार्थो के प्रकार अनेकानेक होने पर भी **''भूख लगना''** यही उन सबका ''आरम्भ'' होता है तथा **''भुख की शान्ति''** यही उन सब खाद्य पदार्थो के खाने का अंतिम लक्ष्य या उद्देश्य होता है। एक अन्य उदाहरण लें एक स्थान से दूसरे स्थान तक की यात्रा में पहुंचने के लिए अनेकानेक मार्ग होते हुए भी उन सबका आरम्भ स्थल और पहुंचने का इंगित लक्ष्य स्थल एक समाज ही रहता है किन्तु लक्ष्य स्थल तक पहुचनें के ''साधन एवं मार्ग'' तथा रितीयाँ अनेकानेक है।

इसी प्रकार हमारे योगियों ने जीवन के अन्तिम गन्तव्य स्थल या लक्ष्य को प्राप्त करने का मूल दुःख और अज्ञान के प्रारंभ बिन्दू से होकर इनके छुटकारे के लिये अन्तिम गन्तव्य स्थल के रुप में मोक्ष, कैवल्य निःश्रेयस, निर्वाण इत्यादि अनेक शब्दों से घोषित अन्तिम लक्ष्य को निर्धारित किया हैं इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु साधन एवं मार्ग अनेक है। भारतीय ज्ञान के सर्वोच्च साहित्य में वेद प्रमुख हैं वेद व्यावहारिक ज्ञान की दृष्टि से तीन काण्डों में विभक्त है

(1) कर्मकाण्ड (2) उपासना काण्ड (3) ज्ञान काण्ड

वेद के **कर्मकाण्ड** के अनुसार कर्म – सुकौशल को योग कहते है। वेदों के **उपासना काण्ड** के अनुसार चित्त वृत्तियों का निरोध को और वेद के **ज्ञानकाण्ड** के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा के एकीकरण को योग कहते है।

3.3 इकाई 7 राजयोग (कर्म, भक्ति एवं ज्ञानयोग के संदर्भ में)

विभिन्न प्रकृति के लोग इस जगत् में रहते है। इनके दुःख निवारण के लिए तथा मुक्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये विभिन्न धर्मों ने अपने अपने मार्ग बतलाये है। इन धर्मों के बीच **हिन्दू धर्म** ने सभी प्रवृतियों को ध्यान में रख एक आदर्श साधना विधान के द्वारा मुक्ति का संदेश प्रस्तुत किया है जिसके निम्नलिखित चार पद है –

1. राजयोग (The path of Concentration)
2. कर्मयोग (The path of Action)
3. भक्ति योग (The path of Devotion)
4. ज्ञान योग (The path of Real Knowledge)

3.3.1 राजयोग का स्वरुप (Nature of the path of Concentration)

श्री भगवान् ने उद्धवजी को तीन योगों का उपदेश दिया था। वे हैं **ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग।** अध्यात्म मार्ग में शीघ्र अग्रसर होने की इच्छा करने वाले व्यक्ति को अपने स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण –इस देहचातुष्टय तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इस **अन्तःकरण** –चातुष्टय को शुद्ध करना परमावश्यक है।

स्मृति ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि, स्थिति और लय का कारण अन्तः करण ही है। अन्तःकरण की सहायता से जिसका साधन किया जाता है, उसको राजयोग कहते है। अन्तः करण दृश्य है और आत्मा इस दृश्य का द्रष्टा है। दृश्य से दृष्टा का सम्बन्ध होने पर सृष्टि होती है। सृष्टि की उत्पत्ति का कारण चित वृत्तियों का चाचंल्य है। इस चित्त वृत्ति चांचल्य पर नियंत्रण प्राप्त करना ही स्व–स्वरुप का ज्ञान (प्रकाश) होना है और यही योगों का अन्तिम लक्ष्य होता है जिसे **राजयोग** कहा गया है।

राजयोग साधना :– राजयोग साधना में विचार बुद्धि (चिन्तन और मनन)का प्राधान्य होता है। विचारशक्ति की पूर्णता द्वारा राजयोग का साधन होता है। राजयोग के ध्यान को **''ब्रह्मध्यान''** कहते है। राजयोग के द्वारा सिद्धि प्राप्त साधक को **जीवनमुक्त** कहते है। जैसे मंत्रयोग की साधना से महाभाव समाधि होती है, **हठयोग** की साधना से **महाबोध समाधि** प्राप्त होती है, **लययोग** की साधना से **महालय समाधि** प्राप्त होती है, उसी प्रकार राजयोग की साधना से **जीवनमुक्त** की समाधि को **निर्विकल्प समाधि** कहते है। यह निर्विकल्प समाधि ही कैवल्य की प्राप्ति है। जैसे समाज में यह श्रेष्ठतम पद राजा का पद एक ही होता है उसी प्रकार विभिन्न योगों के अन्तिम लक्ष्यों के बीच साधना का चरम् लक्ष्य **''कैवल्य''** का पद प्राप्त करना अन्तिम लक्ष्य है। इस कारण इसे राजयोग कहते है। राजयोग सब योग साधनों में श्रेष्ठ है और साधन की चरम सीमा है। राजयोग के साधनों को शास्त्रों में विभिन्न अंगों में विभाजित किया गया है। ये अंगों सोलह प्रकार में विभक्त है।

राजयोग के अंग :– जैसे पूर्ण चन्द्रमा की सोलह कलाएँ होती है। उसी प्रकार योग की पूर्णता हेतु निम्नांकित सोलह अंग बताये गये है।

(1) ज्ञान की सात भूमिकाएँ

i) शुभेच्छा :– मोक्ष की इच्छा को शुभेच्छा कहते है।

ii) सुविचारणा :– गुरु के समीप श्रवण–मनन करने की अन्तःकरण की वृत्ति सुविचारणा कहलाती है। विवेक वैराग्य से अभ्यासपूर्वक सदाचार में प्रवृत रहना।

iii) तनुमानसा :– निदिध्यासन अर्थात ध्यान और उपासना के अभ्यास से मानसिक एकाग्रता को प्राप्त करने की योग्यता।

iv) सत्वापत्ति :– संशय विपर्यय रहित ब्रह्म और आत्मा के तादात्मय अर्थात उपरोक्त अनुभूति की अवस्था। यह सिद्धावस्था है।

v) असंसक्ति :– सविकल्प समाधि के अभ्यास के द्वारा मानसिक वृत्तियों के निरोध की निर्विकल्प समाधि की अवस्था।

vi) पदार्थभावनी :– गहन (प्रगाढ़) सुषुप्ति की स्थिति। नित्य समाधि की अवस्था।

vii) तुर्यगा :– केवल एक ही स्थिति ब्रह्मीभूत–स्थिति में ही सदा रमण करते रहने की अवस्था।
उपरोक्त ज्ञान की सात भूमिकाएँ विचार प्रधान है। इनके साधन भी अनेक प्रकार के है।

(2) धारणा :– यह भी दो प्रकार की होती है।

i) प्रकृति धारण

ii) ब्रह्म धारणा

(3) ध्यान :– ये तीन प्रकार के होते है।

i) विराट्ध्यान

ii) ईशाध्यान

iii) ब्रह्म ध्यान

(4) समाधि :– समाधि के दो प्रकार हैं।

i) सम्प्रज्ञात या सबीज :– इसके चार भेद है– वितर्कनुगम, विचारनुगम, आनन्दनुगम और अस्मितानुगम।

ii) असम्प्रज्ञात या र्निबीज :– इसके दो भेद है :– भवप्रत्यय, और उपायप्रत्यय।

राजयोग की प्राप्ति हेतु इन सोलह अंगों का साधन करना होता है। मन्त्रयोग, हठयोग और तारकयोग में सिद्धि

या किसी एक में सिद्धि प्राप्त होने के बाद साधक राजयोग में पूर्णाधिकार प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार राजयोग का अर्थ है समाधि। महर्षि पतंजलि के अष्टांगयोग का लक्ष्य भी समाधि है। इस कारण **अष्टांगयोग समाधि–अर्थयुक्त राजयोग** कहलाता है। महर्षि पतंजलि के योग के आठ अंगों में सभी अन्य योगों का अर्न्तभाव हो जाता है।

उदाहणार्थ :–

(1) राजयोग :– अष्टांगयोग का मुख्य लक्ष्य समाधि (राजयोग) की प्राप्ति ही है।

(2) कर्मयोग :– साधना के साधक अपने अन्दर साध्य के गुणों को धारण करता ही है। अतः इससे निष्कामकर्म या अनासक्ति योग की शिक्षा स्वतः मिलती है।

(3) भक्ति योग :– भक्ति का प्रमुख अंग है श्रद्धा। अतः ''श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि ''तथा'' ईश्वप्रणिधानाद्वा'' सूत्र भक्ति द्वारा योग प्राप्ति के निर्देशक है।

(4) ज्ञानयोग :– सम्मपूर्ण ज्ञेयतत्व का ज्ञान ही योग है। तथा योग सांख्य (ज्ञान) की अभिन्नता है अर्थात दोनों एक ही आधार भूमि में प्रतिष्ठित है। यहि राजयोग का स्वरुप है।

राजयोग साधना का साधन क्रम

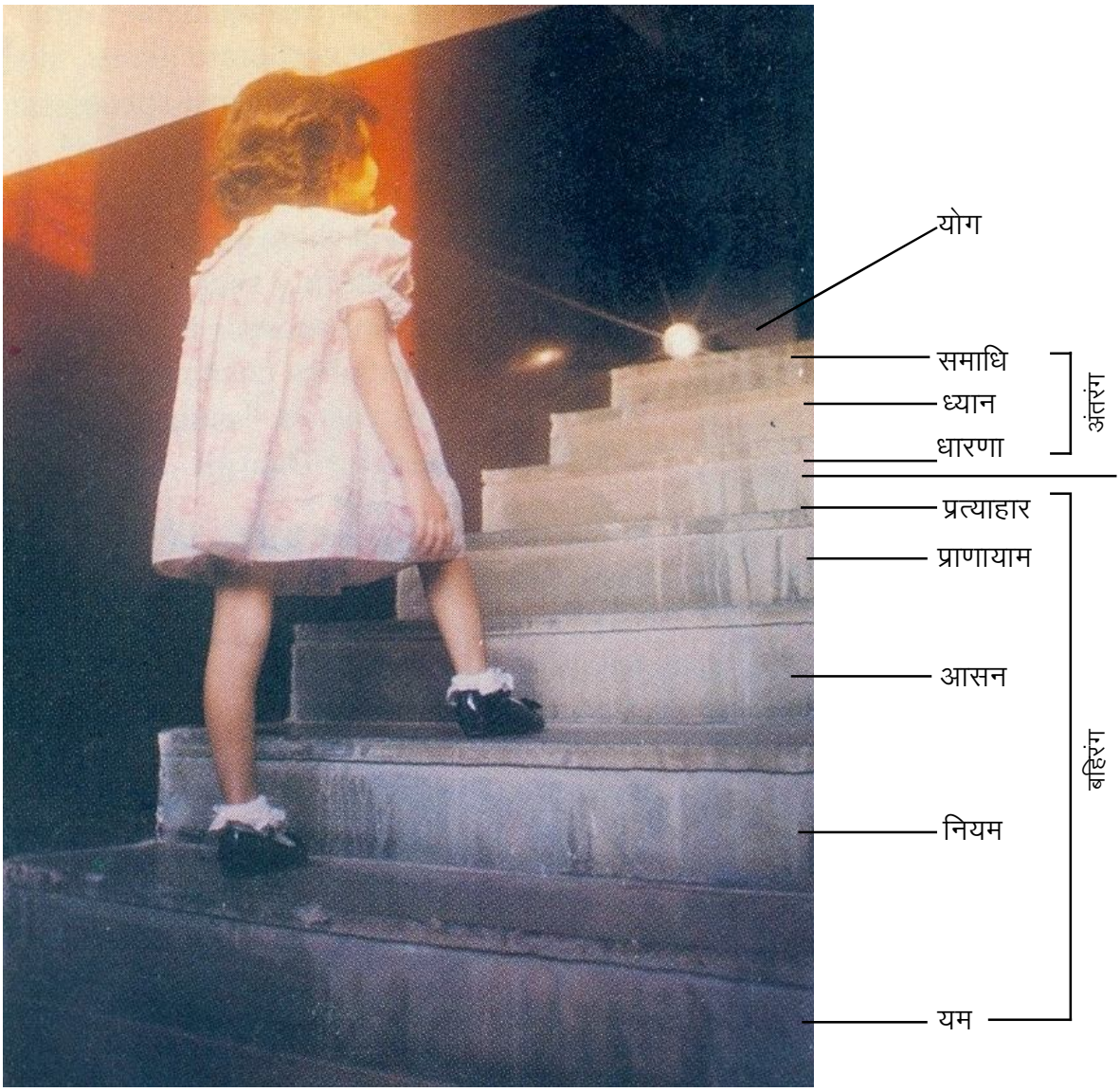

योग के अष्टांग पथ

मानवीय चेतना के अन्तःमुखी प्रवाह के नियंत्रण हेतु राजयोग अपने साधना क्रम में **धारणा** और **ध्यान** से प्रारंभ करता है। राजयोग की साधनभूमि प्रधानतः समाधिभूमि है ऐसा हमने ऊपर अध्ययन किया है। समाधि भूमि में पहले वितर्क रहते है और उसके बाद आगे विचार शुरु होता है। विचार की अन्तः भूमि आनन्दानुगत होती है। आनन्द ही मानवीय अस्तित्व या अस्मिता की शुद्ध अवस्था है। साधक को जब दृश्य के चार भेदों विशेष लिंग, अविशेषलिंग, लिंग, और अलिंग का ज्ञान होता है। तब वह विशेष लिंग (जड़ जगत) और अविशेषलिंग (प्रकृति) को त्यागने योग्य हो जाता है। इसके बाद लिंग मात्र **मैं ब्रह्म हूँ** की चेतना **सविकल्पक** होती है। इसे अविशेषलिंग या **निर्विकल्प समाधि** की स्थिति जिसे **तुरीय अवस्था** या **भावातीत अवस्था** कहते है इसका साधना क्रम शास्त्रों में वर्णित नहीं है। इस क्रम को जीवन्मुक्त गुरु या अपरोक्षनुभूति प्राप्त साधक द्वारा ही उपदेशित किया जा सकता है।

राजयोग के इस साधन क्रम का यदि मूल्यांकन या समालोचना की जाय तो यह सिद्धान्त प्राप्त होता है कि राजयोग के सोलह अंगों का क्रमशः पालन उसी प्रकार किया जाना चाहिये जैसे छत्त पर चढ़ने हेतु एक–एक सीढ़ी पर चढ़ना होता है, और छत्त पर पहुँचने के बाद सीढ़ी की आवश्यकता नहीं रह जाती है। साधक प्रकृति (सृष्टि) के स्वरूप को समझकर ब्रह्म, ईश या विराट्रूप में अद्वितीय बह्यसत्ता का साक्षात्कार (दर्शन) कर ध्यानभूमि की अनन्तम् गहराई (समाधि) में पहुँच जाता है और समाधि की दशाओं में प्रवेश करते हुये स्व–स्वरूप को प्राप्त कर जीवनमुक्त दशा रूपी समस्त योगों के ध्येय को प्राप्त कर लेता है। यही राजयोग की उपासना का अन्तिम पड़ाव है।

3.3.2 कर्मयोग का स्परूप (Nature of the path of Action)

साधना से साधक अपने अन्दर साध्य के गुणों को धारण करता है। ''साधना (कर्म) की प्रकृति एवं साध्य के अनुरूप प्राप्त परिणाम **कर्मयोग** कहलाता है।'' **कर्म का अर्थ** है शरीर से तथा मन से की जाने वाली क्रिया। क्रिया या कर्म के बिना किसी को भी एक क्षण के लिए भी रहना असंभव है। हम जो भी कर्म करते हैं उन सबके संस्कार मन में संचित होते जाते है। भारतीय दर्शनों की यह मान्यता है कि मन में हमेशा इस जन्म में तथा पूर्व जन्मों में किये हुए प्रत्येक कर्म के संस्कारों का एक प्रचंड समुदाय या संग्रह रहता है। इसको **कर्माशय** कहते हैं। प्रत्येक कर्म संस्कार का फल हमें कभी न कभी अवश्य मिलने वाला है, चाहे इसी जन्म में हो या आने वाले जन्मों में। अच्छे कर्म का अच्छा फल होगा, बुरे कर्म का फल दुःखदायक होगा। कर्मफल को **'कर्मविपाक'** कहा जाता है। कर्माशय से जीव संसार में बंध जाता है। जब तक सभी कर्मो के फल भोगकर समाप्त नहीं किये जाते तब तक संसार से मुक्ति नहीं हो सकती। कर्मयोग वह युक्ति या कुशलता है जो मनुष्य को कर्मबंधन से मुक्त करा देती है। यह **युक्ति है कर्मफल की इच्छा को छोड़ देना**। इसलिये उसको अनासक्त योग या **निष्काम कर्मयोग** कहते है। इसमें लाभ, हानि, सुख, दुःख, शीत, उष्ण आदि द्वन्दों के प्रति समान दृष्टिकोण रखा जाता है। इसलिए यह **समत्व बुद्धियोग** भी कहलाता है। कर्मफल की इच्छा को छोड़कर कर्म करते रहना, कर्त्तव्य को कभी नहीं छोड़ना, यह कर्मयोग का **सारांश** है। कर्मफल के प्रति आसक्ति को छोड़ने से कर्म के बंधनों से छुटकारा मिल सकता है। अर्थात् इच्छा और आसक्ति का त्याग करना तथा मन को स्थिर एवं शांत करना यही कर्मयोग का स्वरूप है।

कर्मयोगी अर्जुन

कर्म का स्परूप :– इस जगत् में अपनी–अपनी प्रकृति के अनुसार आचरण करने के लिए गीता में दो प्रकार की निष्ठाएँ बतायी गयी हैं। उनमें से **ज्ञानयोग** ज्ञानियों के लिए तथा **कर्मयोग** कर्मयोगियों के लिए है। **ज्ञान योग निवृत्ति** मार्ग तथा **कर्म योग प्रवृत्ति** मार्ग है।

कर्म योग अन्य योगों की अपेक्षा अधिक ग्राह्य है इसकी ग्राह्यता के निम्नलिखित कारण है –

1. निष्काम कर्मयोग प्रवृत्ति में **निवृत्ति** मार्ग की ओर इंगित करता है। यह ग्रहस्थ आश्रम का विशिष्ट योग है मनुष्य ग्रहस्थ आश्रम में रहकर अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करते हुए तथा आश्रम का बिना त्याग किये हुए इस योग क माध्यम से परमतत्व की प्राप्ति में समर्थ हो सकता है। भगवान् ने गीता में सूर्य, मनु, इक्ष्वाकु तथा जनक आदि ग्रहस्थ राजर्षियों का नाम उद्धत करते हुए इंगित किय है कि कल्प के प्रारंभ में प्रवृत्ति मार्गियों ने इस विद्या को जानकर तथा इसके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर आचरण करके सुगमतापूर्वक परमात्मतत्व की प्राप्ति की थी।
2. निष्काम कर्मयोग के आश्रय के बिना ज्ञानयोग भी सरलता से नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसी उद्देश्य से श्रीमद्भागवत गीता 5वें अध्याय के 6वें श्लोक में **निष्काम कर्मयोग** के बिना ज्ञानयोग की प्राप्ति भी दुःखपूर्वक होनी बतायी गयी है।
3. कर्मयोग का आचरण अन्य योगों की अपेक्षा अत्यन्त सुगम तथा व्यावहारिक है। समस्त अवस्थाओं, जातियों, धर्मों एवं सम्प्रदायों में इस निष्काम कर्मयोग का आचरण निर्भयतापूर्वक किया जा सकता है। निष्काम भावना से किये जाने के कारण इसमें किसी प्रत्यवाय या विपरीत दण्ड का भी भय नहीं रहता। अतः यह सब प्रकार से उपयोगी तथा सुरक्षित योग है।
4. कर्म के विषय में अर्जुन के मोहित हो जाने से ही श्रीमदभगवत्गीता का उपदेश दिये जाने की आवश्यकता हुई थी। गीता वन में चले जाने को आतुर अर्जुन को स्वधर्म में रत रहने की प्रेरणा देकर कर्म की ओर ही प्रेरित करती है। यह संसार भी एक युद्ध है, जिसमें निष्काम कर्मयोग के माध्यम से कर्म करते हुए परम पद की प्राप्ति कराना ही गीता का मुख्य उद्देश्य है।
5. तत्वज्ञान की प्राप्ति के बाद उद्यपि ज्ञानयोगी को कर्म करना आवश्यक नहीं है फिर भी लोक संग्रह एवं लोकशिक्षा के लिए आदर्श स्थापन के लिए वह कर्मों में प्रवृत रहता है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गीता में स्वयं ब्रह्मा तथा भगवान के द्वारा कर्मों में प्रवृत रहने की वरीयता दी गई है।

कर्मों की कोटियाँ

निष्काम कर्मयोग में **कर्म** ही वह कार्यकारी उपादान है, जिसके माध्यम से योग रूपी भव्य भवन का निर्माण होता है। यद्यपि कर्मों की गति अत्यन्त गहन तथा कठिन है फिर भी गीता में विभिन्न सन्दर्भों के अनुरूप **कर्मों** को निम्नलिखित तालिका ''क्रमांक 01'' में निर्दिष्ट कोटियों में दर्शाया गया है

क्र.	प्रकार	प्रकार	प्रकार
1.	कर्म	अकर्म	विकर्म
2.	सात्विक	राजस	तामस
3.	शारीरिक	मानसिक	वाचिक
4.	इष्ट	अनिष्ट	मिश्रित
5.	शुभ	अशुभ	शुभाशुभ
6.	संचित	प्रारब्ध	क्रियमाण

(तालिका क्रमांक – 01)

मानासिक भावना ही क्रियाओं के **कर्म, अकर्म तथा विकर्म** बनाने में मूल हेतु है। कर्म का स्परूप एक दीखने पर भी मानसिक भावना में अन्तर होने के कारण उनके स्वरूप तथा परिणामों में भी अन्तर आ जाता है। कोई भी क्रिया साधारण कामना रहने से कर्म, किसी को अनिष्ट पहुँचाने की भावना होने से विकर्म तथा कामनारहित होने से अकर्म या निष्कामकर्म बन जाता है।

कर्मयोग की परिभाषायें :–

1. मैत्रायष्युपनिषद (4/11) के अनुसार

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासत्कं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।

अर्थात् मनुष्य का मन ही बंधन का एवं मोक्ष दोनों का ही कारण है। विषयों में आसक्त होने से बंधन हो जाता है तथा विषयों में आसकत्त न होने पर मोक्ष हो जाता है ऐसा स्मृति कहतीं है।

2. श्रीमद्भगवद्गीता (5/11 एवं 18/15) के अनुसार

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सगं त्यकत्तात्मशुद्धये।।
शरीरवाड.मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पच्चैते तस्य हेतवः।।

अर्थात शरीर, मन और इन्द्रियों द्वारा की जाने वाली प्रत्येक चेष्टा या व्यापार या हलचल का नाम कर्म है। इस परिभाषा में कर्म की परिधि इतनी अधिक व्यापक है कि देहधारियों के द्वारा किसी काल में संपूर्ण कर्मों का त्याग किया जाना संभव ही नहीं है।

3. निष्काम कर्मयोग के संदर्भ में गीता (2/50) के अनुसार

बुद्धियुत्को जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

जब देहधारी बिना कर्मों के रह ही नहीं सकता तब कर्म योग हेतु निष्काम कर्म की गीता में उपरोक्त परिभाषाओं द्वारा कर्मयोग को स्पष्ट किया गया है कि **समबुद्धि** युक्त पुरूष **पुण्य** और **पाप** दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है अतः मनुष्य को समत्वरूप योग में लग जाना चहिये यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबंधन से छूटने का उपाय है।

कर्मयोग की विशेषताएँ

कर्मों को करने में वह कौशल या युक्ति क्या होनी चाहिये, जिससे प्रवृत्तिमार्ग में रहते हुए निवृत्तिमार्ग का फल या परमतत्व की प्राप्ति हो जाय। अर्थात् कर्मों को भुने चने के समान अंकुरणरहित या बंधनमुक्त कैसे बनाया जाय ? इस हेतु कर्मयोग अपनी पद्धति से निम्नलिखित विशेषताओं को प्रस्तुत करता है –

1. केवल नियत कर्म का सिद्धांत

मीमांसा दर्शन में कर्म को दो प्रकारों में बाँटा गया है।

1. विहित कर्म और
2. निषिद्ध कर्म

वेदों एवं परिवर्तित शास्त्रों में विहित कर्म की निम्नलिखित चार प्रक्रियायें बतलाई गई है –

1. नित्य कर्म
2. नैमित्तिक कर्म
3. काम्य कर्म और
4. प्रायश्चित कर्म

निष्काम कर्मयोग में निषिद्धकर्म (चोरी, व्यभिचार, असत्य, कपट, हिंसा आदि) तथा काम्यकर्म (स्त्री, पुत्र, धन, यश आदि की प्राप्ति हेतु कर्म) सर्वथा त्याज्य है।

नित्य, नैमित्तिक एवं प्रायश्चित संबंधी समस्त विहित कर्मों को एक व्यक्ति द्वारा किया जाना संभव नहीं है। अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार निर्धारित कर्म तथा यज्ञ, दान और तप को नियत कर्म, सहज कर्म या स्वाभाविक कर्म कहा गया है। इहलोक तथा परलोक के संपूर्ण भोगों की कामना का सर्वथा त्याग करते हुए श्रद्धा एवं उत्साहपूर्वक इन्हीं नियत कर्मों का किया जाना इस योग में आपेक्षित है।

2. फल की इच्छा का अभाव

इस योग में कर्त्तव्य कर्मों का किया जाना मानव का स्वाभाविक धर्म हैं, किन्तु उनमें फल–प्राप्ति की कामना कदापि नहीं होनी चाहिये। परिश्रम, श्रद्धा एवं निष्ठापूर्वक किये गये कर्म का फल तो अच्छा ही होगा। इसी भावना को दृष्टिगत रखते हुए निष्काम कर्मयोग के निम्नलिखित उपदेश गीता में किये गये है –

(i) कि तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु कम हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसकित्त न हो।

(ii) जो व्यक्ति कर्मों में और उनके फल में आसत्कि का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है वह कर्मों में भली भाँति बरतता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।

(iii) कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत्प्राप्ति रूप शांति को प्राप्त होता है और सकाम पुरूष कामना की प्रेरणा से फल में आसत्क होकर बँधता है।

(iv) और जो पुरूष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह सन्यासी तथा योगी है, और केवल अग्नि का त्याग करने वाला सन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओंका त्याग करने वाला योगी नहीं है।

3. आसक्ति का अभाव :–

विषयों का ध्यान करते हुए पुरूष के लिए आसक्ति ही वह प्रथम सीढ़ी है, जिस पर आरूढ़ होकर मानव पतनोन्मुख होकर नष्ट हो जाता है। श्रीमद्भगवतगीतामें उसके पतन का क्रम यह है कि प्रायः सामान्य व्यक्ति को **विषयों का चिन्तन** करते–करते उन विषयों में आसक्ति हो जाती हैं, जिससे उनकी कामना उत्पन्न होती है। **कामना** में विध्न पड़ने से **क्रोध** उत्पन्न होता है। क्रोध से **अविवेक** या मूढभाव उत्पन्न होता है, जिससे **स्मरण शक्ति भ्रमित** हो जाती है। स्मृति के भ्रमित होने से **बुद्धि का नाश** होता है तथा अन्ततः वह पुरूष अपने साधन से पतित होकर नष्ट हो जाता है।

4. समत्व बुद्धि

जिस प्रकार समुद्र में विभिन्न नदियों के जल प्रवेश करते हैं, लेकिन उसमें कोई विशेष हलचल उपस्थित नहीं होती, उसी प्रकार इस जगत् में रहते हुए निष्काम कर्मयोगी के मन में सिद्धि–असिद्धि, जय–पराजय, सुख–दुःख तथा लाभ–हानि आदि द्वन्दों में भी कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। यही समत्व निष्काम कर्मयोग या समत्व नामक बुद्धियोग कहलाता है।

5. सर्वत्र समान व्यवहार

जिस प्रकार मनुष्य अपने शरीर के समस्त अंगों सिर, मुँह, मस्तिष्क, गुदा तथा उपस्थ के विभिन्न कर्मों को जानते हुए भी उनके सुख–दुःख में समान व्यवहार करता है, उसी प्रकार निष्काम कर्मयोगी भी समस्त प्राणियों में ब्रह्म–सत्ता का दर्शन करता हुआ उनसे यथोचित व्यवहार करता है तथा किसी से द्वेष नहीं करता।

6. काम्य संकल्पों का भी त्याग

कर्मयोग के साधक के लिए केवल काम्य कर्मों का ही नहीं, अपितु समस्त काम्य संकल्पों का भी परित्याग

कल्याणकारी है, क्योंकि जब बीजरूप संकल्प ही नहीं होगा तो काम्य कर्मरूप वृक्ष की भी उत्पत्ति नहीं होगी तथा परमतत्व की प्राप्ति में प्रारंभ से ही कोई व्यवधान भी नहीं होगा।

7. कर्मों का ईश्वरार्पण तथा शरणागति भाव

कर्मयोग की साधना में कर्मों को भगवान को ही अर्पण किया जाना अपेक्षित है। समस्त कर्म पूर्ण शरणागति तथा समर्पण भाव से करना चाहिये ताकि उन कर्मों को करने से किसी प्रकार का बंधन न हो।

साराशंतः **कर्मयोग** मानव की **शारीरिक, मानसिक** तथ **आध्यात्मिक प्रकृति** के सर्वथा अनुकूल है। इससे स्वार्थ तथा परमार्थ, व्यक्ति तथा समाज, इहलोक एवं परलोक सभी का कल्याण साधन होता है। वैयक्तिक कामना से रहित होकर विश्वात्मा की कामना से कर्म करना ही ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करता है। कर्म योग के सभी प्रकारों को समझाने के बाद अन्त में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को **उपदेश दिया** कि वह **सभी धर्मों को छोड़कर केवल उनकी शरण में आ जावें**। वे स्वयं उसे समस्त पापों से मुक्त कर देगें। अतः **निष्काम कर्मयोग का भी प्रयोजन मानव का दैवी रूपान्तर** करके ईश्वर के कार्य का साधन बनाते हुए समग्र विश्व के वास्तविक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1. राजयोग के अंग बताइये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. गीता में कर्मों की कोटियाँ कौन–कौन सी बताई गई है लिखिये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3.3.3 भक्ति योग का स्वरूप (Nature of the path of Devotion)

निष्काम कर्मयोग के विषय में जो इसके पूर्व में आपने अध्ययन किया है, उसी के अन्तर्गत ही भक्तियोग भी है। नामस्मरण, चिन्तन, धारणा, ध्यानरूप जो भक्ति है, वह भी एक मानसिक कर्म ही है। इस कारण भक्ति निष्काम कर्मयोग के अर्न्तरभूत है। जिस प्रकार निष्काम कर्म अन्तःकरण की स्थिरता का हेतु है। जब बाह्य करण शुद्ध एवं अन्तःकरण स्थिर हो जाता है। तब ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान प्राप्त होता है। अतः साधक को **कर्मयोग** एवं **भक्ति योग** दोनों की साधना करनी चाहिये तब जाकर **ज्ञान योग** हो पाता है। भक्ति योग को अनन्य योग भी कहा जाता है।

गुरू द्वारा प्रस्तुत **''तत्वमसि''** महावाक्य का बिना कर्मयोग एवं भक्ति योग के साधन के ज्ञान युक्त (ज्ञान योग) नहीं किया जा सकता है। इस महावाक्य में **'तत्'** पद का अर्थ है ईश्वर और **'त्वं'** पद का अर्थ है जीव इन दोनों अर्थ के साथ **'असि'** पद से **ईश्वर** और **जीव** का जो एक्य ज्ञान है। वह ज्ञान व्यवहारिक हो जावें तो **ज्ञानयोग** हो जाता है।

अनुग्रह, प्रेम, भक्ति ये तीनों एक ही **स्नेह** के पर्याय है। वयोमान, गुण, योग्यतादि से किंचित न्यून रहने वाले सेवक, शिष्य, पुत्रादि पर जब इस स्नेह का भाव पहुँचता है तब उसे अनुग्रह के रूप में हम जानते है। यदि अपने समकक्ष, मित्रगणों, भार्यादि से स्नेहमय वार्तालाप अथवा पत्रव्यवहारादि किया जाता है तो यही स्नेह **प्रेमस्परूप** में प्रकट होता है और वह हम अपने से श्रेष्ठ माता, पिता, गुरू और देवादि के पास विनय, श्रद्धा, सदाचारादि अलंकारों से युक्त होकर जाते है तो यह स्नेह **राजर्षि प्रसाद**, **अम्बरीष** या **देवर्षि नारदादि** के समान हो जाता है। केवल इसी स्नेह के ऊपर समस्त विश्व का उदय और आनन्द निर्भर है। यदि यह स्नेह समस्त भूमण्डल में फैल जाये तो यही **भूलोक स्वर्गलोक** बन जायें। यही भक्ति योग का संकल्प है।

भक्ति योग का अर्थ

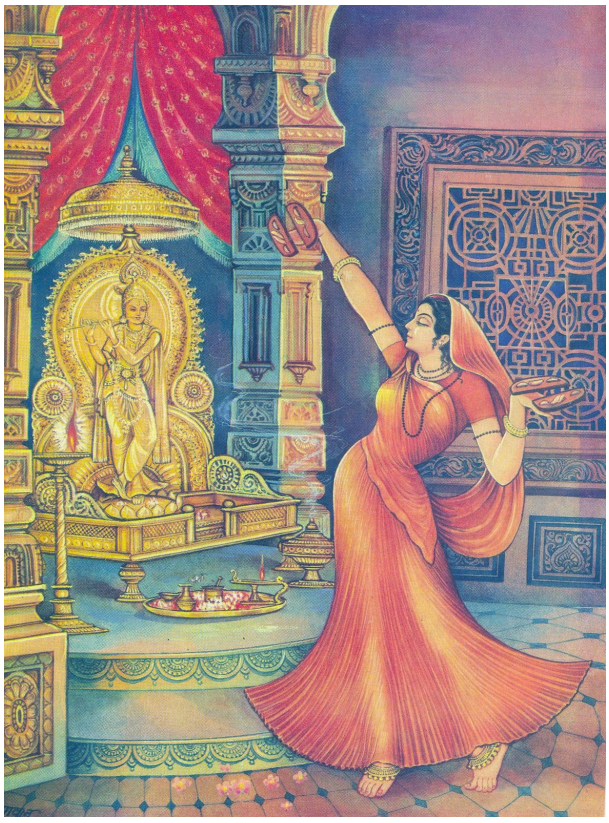

भक्ति (प्रेम) योगिनी मीरा

''भक्ति'' शब्द **'भज'** धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है भजन करना या सेवा करना। इस प्रकार भक्ति या सेवा के द्वारा भगवान से संबंध स्थापित करने का नाम भक्ति योग है। महर्षि नारद के अनुसार **'भग वान'** के प्रति उत्कृष्ट प्रेम ही भक्ति है। महर्षि शाण्डिल्य के अनुसार ''यह परमात्मा के प्रति सर्वोच्च अभिलाषा है।'' ईश्वर के प्रति तीव्र प्रेम होने पर भक्त भगवान के रंग में रंग जाता है। यह बात भगवान कृष्ण गीता में कहते है :–

नाहं व सामि बैकुण्ठे योगिनां हद्रये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्णामि नारद।।

अर्थात् मैं योगियों के हद्रय में नहीं रहता, न तो स्वर्ग में रहता हूँ। बल्कि मैं वहां निवास करता हूँ जहां मेरे भक्त मेरा गुणगान करते हैं।

ईश्वर और भक्त जीव के **मिलन (योग)** के लिए उपाय स्वरूप गीता में भक्तियोग बतलाया गया है। भक्त द्वारा किया गया प्रत्येक कर्म ईश्वर के प्रति स्नेह या प्रेम के कारण किया जाता है इसी कारण भक्ति योग को **प्रेमयोग** भी कहा जाता है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को शरणागति (भक्तियोग) का ज्ञान दिया है। श्री रामानुजाचार्य ने भक्ति योग की श्रेष्ठता स्थापित करते हुये बतलाया है कि गीता का **उपक्रम (प्रारंभ)** और **उपसंहार (समापन)** दोनों **शरणागति** (भक्तियोग) से है। भक्ति योग ज्ञान और कर्म से अनुप्राणित है। परम भक्त के लिए ज्ञान और निष्काम कर्म वस्तुतः एक ही है। क्योंकि तीनों का अर्थ है – निर्विकल्प, अपरोक्ष (अप्रत्यक्ष) **अनुभूति** भक्ति, ज्ञान और कर्म में अन्तर केवल लौकिक व्यवहार जगत् में ही है। क्योंकि अपनी परम अवस्था में वे सभी प्रत्यक्ष अनुभूति में परिणित हो जाते है। लौकिक ज्ञान बुद्धि विकल्प जन्य (त्रिगुणात्मक) है, और ज्ञाता इसके श्रेय के संबंध पर टिका हुआ है पर ज्ञान अद्वैत, निर्विकल्प अनुभूति है। भक्ति का अर्थ केवल भजन करना नहीं है अपितु अखण्ड ज्ञानानंद रूप भगवद् स्वरूप में भक्त और भगवान एकाकार हो जाते है। लौकिक कर्म में कामना बनी रहती है, जबकि निष्काम कर्म कामना रहित और कर्त्तापन के अभिमान से रहित होने के कारण जीवन मुक्ति की अद्वैत स्थिति का सूचक है।

भक्तियोग के साधन :– श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति योग के निम्नलिखित साधन बताये गये हैं –

1. भगवान की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहना।
2. भगवान की अनन्य शरण में जाना।
3. भगवान का निरन्तर जप करना।

आत्मनिवेदन

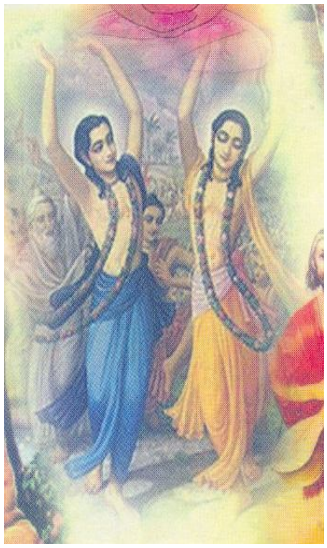

कीर्तन

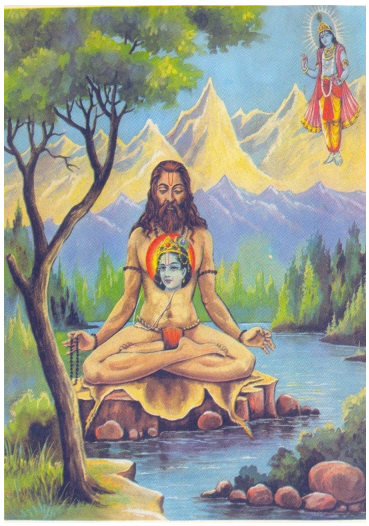

जप

भक्तों के प्रकार :– भक्ति योग के संबंध में भक्तों के चार प्रकार निम्नानुसार बतलाये गये हैं –

1. **अर्थार्थी** :– जो भक्त धन की कामना से भक्ति करता है, उसे अर्थार्थी भक्त कहा जाता है।
2. **आर्त्त** :– जो भक्त सांसारिक दुःखों से मुक्ति के लिए भगवान का भजन करता है, उसे आर्त्त भक्त कहा जाता है।
3. **जिज्ञासु** :– जो भक्त भक्ति के स्परूप को ही समझने के लिए भक्ति करता है, उसे जिज्ञासु भक्त कहा जाता है।
4. **ज्ञानीभक्त** :– जो भक्त अनन्य भाव से भगवान की प्राप्ति हेतु भक्ति करता है, उसे ज्ञानी कहा जाता है। भगवान कृष्ण ने ज्ञानी भक्त को ही सर्वोत्तम भक्त बताया है। भगवान श्री कृष्ण कहते है कि ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है, ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप है।

भक्ति के प्रकार :– भक्त प्रहलाद ने भक्ति के नौ प्रकार बतलाये है। विधि से साधन होने वाली भक्ति को **''वैधी'' भक्ति** कहते है यह नौ प्रकार की है अतः इसे नवधा भक्ति भी कहते है। नवधा भक्ति को निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 02) में स्पष्ट किया गया है।

क्र.	भक्ति का प्रकार	भक्तों के उदाहरण
1.	श्रवणम्	परीक्षित, गार्गि जनमेजय इत्यादि
2.	कीर्तनम	सनत्कुमार, नारद, शुक्राचार्य इत्यादि
3.	स्मरणम्	गजेन्द्र, अजामिल, गोपिका (काम), कंस (भय), शिशुपाल (द्वेष)
4.	पादसेवनम	हनुमानजी, बलि, विभीषण इत्यादि
5.	अर्चनम्	रूक्मणी (पत्रम्), द्रौपदी (पत्रम्), गजेन्द्र (पुष्पम्), शबरी (फलम्), बलि (तोयम्), इत्यादि
6.	वन्दनम्	राहूगण, नलकूबर, मणिग्रीव इत्यादि
7.	दास्यम्	लक्ष्मण, हनुमानजी, सात्यकि इत्यादि
8.	सख्यम्	अर्जुन, सुग्रीव इत्यादि
9.	आत्मनिवेदनम्	द्रौपदी, कुन्ती, उद्धव इत्यादि

(तालिका क्रमांक – 02)

भक्ति योग का उपदेश

भक्ति का अर्थ उपासना से लिया जाता है। उपासना का अर्थ है भगवान का निरंतर स्मरण करना। भगवान के निरंतर **नाम** एवं **जप** से भगवान प्रसन्न होकर अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हैं। अखण्ड चित्त, आनंद की प्रत्यक्ष अनुभूति में भक्त का भगवान से एकाकार हो जाता है। इस प्रकार भक्त एवं परमात्मा में कोई भेद नहीं रह जाता है।

ज्ञानी को भगवान ने अनन्य भक्त (परमभक्त) और आत्म स्परूप (आत्मैव) बताया है। जो भक्त अनन्य भक्ति से भगवान का निरतंर चिंतन करते हुए मेरी उपासना करते हैं। उनकी भगवान प्राप्ति (योग) और उसकी क्षेम (साधना) की भगवान रक्षा करने का संकल्प लेते है। अनन्य भक्ति से ईश्वर का तात्विक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है और ईश्वर से एकाकार किया जा सकता है। गीता में भगवान भक्त को कहते मेरी सत्य प्रतिज्ञा है जो सब धर्मों (कर्मों) को छोड़कर मेरी शरण आ जाता है उसके सब पापों को दूरकर उसे ''मोक्ष'' प्रदान करूंगा। इस अर्थ में मनुष्य का परम पुरूषार्थ ईश्वर की अनन्य भक्ति है तथा भक्ति योग सभी योगों में श्रेष्ठ एवं सरल मार्ग है।

3.3.4 ज्ञानयोग का स्परूप (Nature of the path of Real Knowledge)

भौतिक पदार्थों एवं उनके कार्य व्यापारों को जान लेना अर्थात् सांसारिक ज्ञान और विज्ञान ज्ञानयोग नहीं है। बल्कि तीनों गुणों (मूल प्रकृति) और उनसे उत्पन्न हुए सारे पदार्थों से परे अर्थात् स्थूल–सूक्ष्म और कारण–शरीर तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत् अथवा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष अथवा शरीर, इन्द्रियों, मन अहंकार और चित्त से परे गुणातीत शुद्ध परमात्मतत्व को जिसके द्वारा इन सब में ज्ञान, नियम और व्यवस्थापूर्वक क्रिया हो रही है, संशय, विपर्ययरहित पूर्णरूप से जान लेना ज्ञानयोग है। यह ज्ञान केवल ग्रंथों के पढ़ने या शब्दों के सुन लेने मात्र से ही नहीं प्राप्त हो जाता है बल्कि इसके लिए उपासना योग की आवश्यकता होती है। सम्यक् रूप से कर्मयोग एवं भक्ति योग की परिणिति ज्ञानयोग में होती है।

ज्ञानयोग या बुद्धियोग धर्म की स्पष्ट एवं सरल व्याख्या करता हैं, जो अन्ततोगत्वा बुद्धि को प्रेरणात्मक तीव्र संवेग के रूप में परिणत कर देता है। ज्ञानयोग का लक्ष्य अपने वास्तविक सत्य स्वरूप को समझने में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। वास्तविक स्वरूप क्या है ? तथा वास्तविक संसार क्या है ? ईश्वर क्या है ? और दैवी शक्ति या देव–तत्व क्या है ? ये सब योग के दार्शनिक पहलू हैं। ज्ञानयोग साधक को इतना बुद्धिमान, कृपालु, नम्र और सावध ाान बनाता है, जिससे इस प्रपंचात्मक जगत् की विपरीत स्थितियों में साधक घबड़ाते नहीं और न ही दुविधा पूर्ण स्थिति में किंकर्तव्य विमूढ़ ही होते है।

इस जगत का प्रत्येक अणु–सजीव या निर्जीव प्रतिक्षण उत्तरोत्तर शुद्ध होकर विकास मार्ग में गतिशील हो रहा है। इसी के अनुसार मानव प्राणी के भीतर भी अन्तिम सर्वोत्कृष्ट स्थिति, मुक्ति स्थिति प्राप्त करने की अभिलाषा ज्ञात या अज्ञात भाव से रहती ही है। भगवती श्रुति कहती हैं।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः

इससे यह सिद्ध है कि ज्ञान प्राप्त हुए बिना मोक्षाभिलाषी की मुक्त होने की आशा निरर्थक है। वह ज्ञान क्या है, यह जानना चहिये। इस जगत् में दिखनेवाली प्रत्येक लौकिक विद्या दुःखों की आत्यान्तिक निवृति और सुख की परावधि की प्राप्ति करवाने में सर्वथा असमर्थ है। यह बात बुद्धिमानों के लिए सुस्पष्ट है। तब वह ऐसी कौन सी विद्या है जिसके द्वारा मनुष्य **कर्त्तव्य, ज्ञातव्य** और **प्राप्तव्य** की **परमोत्तम सिद्धि** को साधकर कृतकृत्य हो सकता है ? इस विश्व में अविष्कृत तथा अन्वेषित समस्त विद्याओं में केवल **ब्रह्मविद्या (ज्ञानयोग)** ही सर्वोपरि है और उसी की सहायता से मनुष्य मनुष्यत्व से देवत्व और देवत्व से ईशत्व में प्रवेश कर सकता है।

ज्ञान योग ईश्वर से संबंध स्थापित करने का आध्यत्मिक मार्ग है। ज्ञानमार्ग के द्वारा भी जीव और शिव का, आत्मा और परमात्मा का संबंध हो सकता है। यह संबंध परमात्मा से तादात्म्य या एकीकरण है। ज्ञान योगी आत्म रूप को परमात्मा का स्परूप समझता है, वह परमात्मा से अभिन्न है। ज्ञानयोगी के लिए जगत् ईश्वरमय है, ईश्वर ही है, सृष्टि और सृष्टा में कोई भेद नहीं। जगत् परमात्मा का ही स्वरूप है। परमात्मा से भिन्न किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं। भेद मिथ्यादृष्टि है, अभेद यथार्थदृष्टि है। भेद देखने वाला अज्ञानी और अभेद देखने वाला ज्ञानी है। गीता को अनेक विद्वान ज्ञानयोग का मुख्य ग्रंथ मानते है। **आदिशंकराचार्य** ने **गीता** को **ज्ञानयोग** का ग्रंथ माना है तथा गीता की निवृति मूलक व्याख्या की है। उनके अनुसार निवृतिमार्ग ही यथार्थ मार्ग है। निवृति मार्ग का दूसरा नाम **''कर्मसन्यास''** है। तात्पर्य यह है कि निवृत्तिमूलक ज्ञानमार्ग के द्वारा कर्म का त्याग ही आदर्श माना गया है। अपने सभी कार्यों, इच्छाओं और अपने आपको परमात्मा में मिला देना ही ज्ञानयोग है।

ज्ञानयोग की विशेषताएँ – ज्ञानयोग की निम्नांकित विशेषताएँ है

1. यह संपूर्ण दृश्यमान जगत् परमात्मा का स्परूप है, परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है।
2. दृश्यमान जगत् मिथ्या है। यह कार्य है–विकार है। इस कारण ब्रम्ह ही सत् है।
3. इस मिथ्या जगत् में ज्ञानी के लिए कोई भी कार्य नहीं। ब्रम्ह ज्ञान में सभी कार्यों का पर्यवसान है। **ब्रह्मज्ञानी** को कुछ पाना नहीं रहता। अतः वह कोई कार्य नहीं करता है।

4. ज्ञानी की दृष्टि में **''समता''** होती है वह सबको ब्रह्मरूप या एकरूप समझता है। प्राणिमात्र में वह अभेददर्शन करता हैं।

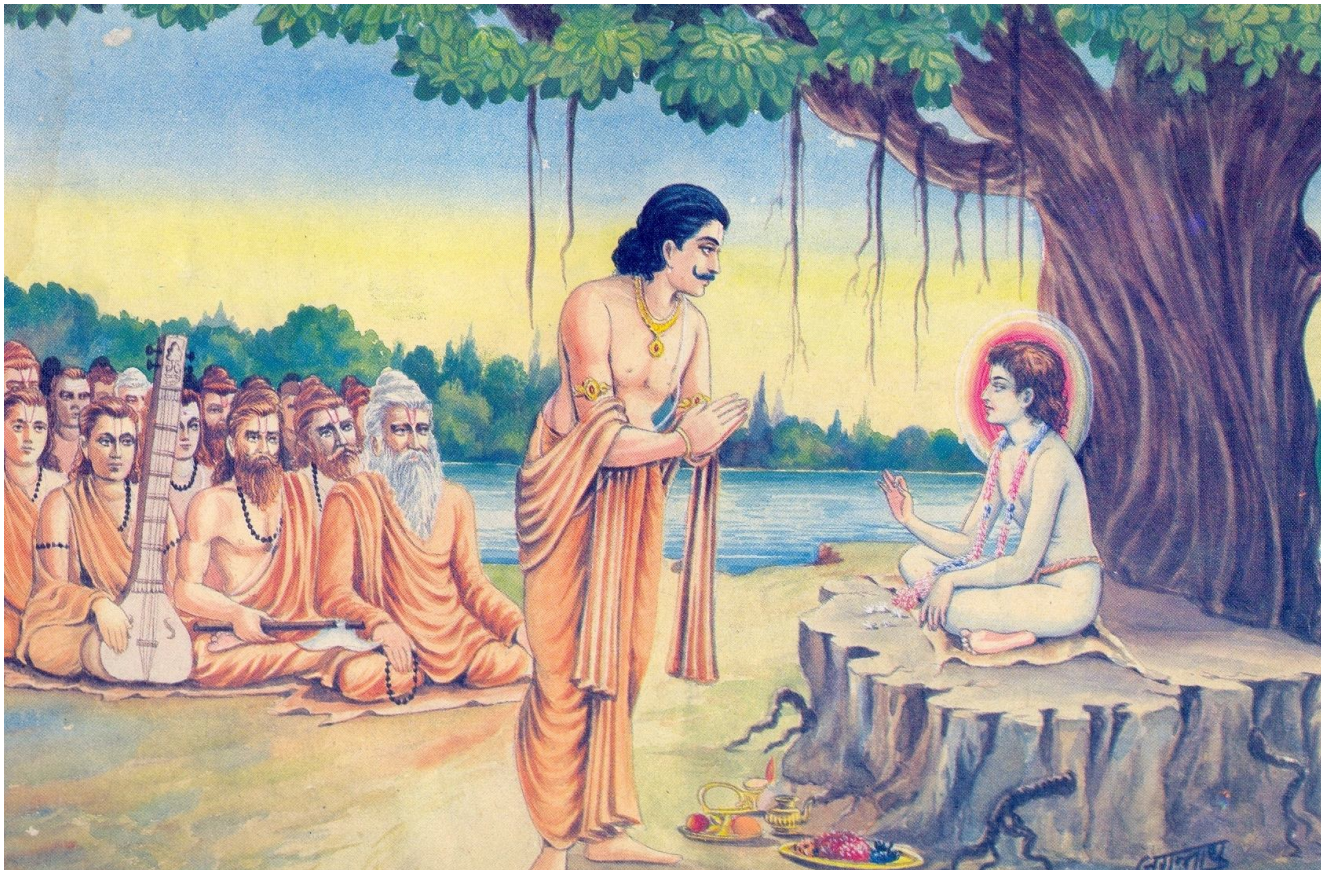

श्री शकुदेवमुनि जी द्वारा ज्ञान योग की शिक्षा

ज्ञान योग में समत्व का स्परूप :– ज्ञानयोग की सबसे बड़ी **विशेषता समत्वयोग** है। श्री कृष्ण ने इस **समत्व** को अनेक स्थान पर उपदेशित किया है। समत्व योग के तीन स्वरूप निम्नांकित है

1. आत्मगत समत्व :– आत्मगत समत्व का गीता में स्वरूप **''स्थित प्रज्ञ''** के रूप में है। स्थित प्रज्ञ गीता का अपना पारिभाषिक शब्द है। यह वेदों उपनिषदों में प्रयुक्त नहीं हुआ है। स्थितप्रक्ष का अर्थ है जिसकी बुद्धि स्थिर हो गयी है। स्थितप्रज्ञ के तीन लक्षण गीता में बतलाये गये हैं।

(i) वह मन की सभी कामनाओं और वासनाओं को सब प्रकार से छोड़ देता है।

(ii) वह सदैव परमात्म चिंतन में ही डूबा रहता है।

(iii) वह न तो दुःखों से उद्विग्न होता और न ही सुख की लालसा करता है। ऐसा समत्व बुद्धि सम्पन्न ही कर सकने में सक्षम है सामान्य व्यक्ति नहीं।

2. वस्तुगत समत्व :– वस्तुगत समत्व से आशय अच्छे–बुरे, मित्र–शत्रु में समभाव रखना ही वस्तुगत समत्व है जिसकी दृष्टि में समता है, उसका कोई शत्रु नहीं है। सम्पूर्ण पृथ्वी उसका परिवार है। वह तृष्णा क्रोधादि से मुक्त होता है।

3. गुणातीत समत्व :– यह सुख–दुःख के परे की अवस्था है। भगवान ने स्वयं कहा है जो सुख–दुःख में एक सा रहता है वही **धीर** है। शीत और उष्ण जिसे विचलित नहीं करते, वही **अमरत्व** का अधिकारी है।

इसी आशय से अर्जुन को सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, को समान समझकर युद्ध करने हेतु प्रेरित करते है। सच्चा ज्ञान योगी उपलब्धि और अनुपलब्धि में समभाव रहता है। उसके लिए मृत्तिका और सोना, अनुकूल और प्रतिकूल, निन्दा और स्तुति, मान और अपमान सब समान होते है यही **''गुणातीत समत्व''** है।

ज्ञानयोग का उपदेश :–

1. संसार को असार तथा आत्मा को परमात्मा का अंश समझना ज्ञानयोग है।
2. यह दृश्य जगत् माया है, मृगतृष्णा है, स्वप्न की सृष्टि है। यथार्थ में सच्चिदानन्द ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, जो कुछ है वह ब्रह्म ही है।
3. ब्रह्म एक ही है, शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, संसार का नानात्व मिथ्या है। एक तत्व ही सत् है। ब्रह्म ही आत्मा है या आत्मा ही ब्रह्म है (तत्वमसि)।
4. संसार में सब कुछ आत्म रूप है, ब्रह्मस्वरूप है। यह एकतत्व दर्शन ही ज्ञानयोग का स्वरूप है। जो योगी यह ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसे **योग युक्तत्मा** या **ब्रह्मयोग युक्तात्मा** कहते है।
5. ज्ञान योगी **''समदर्शी''** होता है। ज्ञान योगी का विषय भाव नष्ट हो जाता है तथा वह भूतों को परमात्मा में तथा परमात्मा का भूतों में विस्तार देखता है।

गुरू द्वारा परम ज्ञान तत्वमसि की शिक्षा

ज्ञानयोग के भेद – गीता के अनुसार ज्ञान योग के तीन प्रमुख स्वरूप है –

1. **ब्रह्ममयी दृष्टि** :– सारी सृष्टि ब्रह्ममय है, चराचर जगत का प्रत्येक पदार्थ परमात्मा स्वरूप है। समस्त चराचर भूतों के बाहर भीतर एकमात्र परमात्मा ही है। ऐसा ज्ञान होना **ज्ञानयोग** है।
2. **मायात्मक जगत** :– जो कुछ दृश्यमान है वह माया है, क्षणिक है, विनाशी है। यर्थाथ में केवल एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता है। इस प्रकार के भाव से परमात्मा में तद्रूप हो जाना ही एकीभाव की स्थिति है तथा यही **ज्ञानयोग** है।
3. **प्रतीयमान विश्व ब्रह्म** :– प्रतीयमान विश्व ब्रह्म है। ब्रह्म ही आत्मा है। अतः संपूर्ण विश्व आत्मरूप है। चराचर सब ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं हूँ इसलिए सब मेरा ही स्वरूप है। इस भाव के उदय होने से मनुष्य आत्मद्रष्टा हो जाता है। वह आत्मा में ही ब्रह्म के प्रकाश पुन्ज का अनुभव करता है। ऐसा योगी ज्ञानयोगी होता है।

सारांश रूप में **राजयोग कर्मयोग, भक्तियोग** एवं **ज्ञानयोग** के संदर्भ में प्रमुख प्रयोजन अन्तिमलक्ष्य को लेकर है। राजयोग का जहाँ अन्तिम लक्ष्य समाधि अर्थात स्वरूप स्थिति में प्रतिष्ठा है तो वही कर्मयोग की साध

ाना के द्वारा साध्य के सायुज्य हो जाता है। वह भक्ति योग में भक्त का लक्ष्य अन्तिम तत्व में अपना समर्पण करना है तो ज्ञान योग का लक्ष्य समस्त दृश्य जगत् का तात्विक अध्ययन कर गुणों से परे निर्विकार गुणातीत तत्व का ज्ञान प्राप्त करना है। इस प्रकार राजयोग जिसे **अष्टांग योग** के साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है अन्य तीनों योग **कर्म, भक्ति** और **ज्ञान** भी अर्न्तभूत ही है। महर्षि पंतजलि ने इन तीनों योगों को व्यवहारिक दार्शनिक पृष्ठभूमि देकर एक व्यवस्थित क्रम में साधना की प्रक्रिया वर्तमान युग के अनुरूप प्रस्तुत कर दी थी। इस प्रकार राजयोग में कर्म भक्ति एवं ज्ञान तीनों का सम्यक् समन्वयन परिलक्षित होता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3. भक्तों के प्रकार कौन–कौन से है बताइयें ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4. ज्ञानयोग की विशेषताएँ लिखिये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3.4 हठयोग (मंत्र, लय एवं तारक योग के संदर्भ में)

3.4.1 हठयोग

हमने पूर्व इकाई में देखा योगों में राजयोग का अधिकार सबसे बढ़कर है। **मन की क्रिया** मनुष्य को बंधन ग्रस्त करती है और **बुद्धि की क्रिया** मनुष्य को **मुक्त** करने में सहायक होती है, यही कारण है कि अज्ञान से जीव **बंधन** को प्राप्त होता है और ज्ञान से **मुक्त** होता है। अतः बुद्धिक्रिया रूपी विचार द्वारा **चित्त वृत्ति निरोध** की जो शैली है उसको हमने **राजयोग** के अन्तर्गत अध्ययन किया साथ ही राजयोग के संदर्भ में ज्ञान, भक्ति एवं कर्मयोग का भी सन्दर्भिक अध्ययन किया।

हठयोग की पद्धति कुछ अलग प्रकार की है। **स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर** का ही परिणाम है इस कारण स्थूल शरीर का प्रभाव सूक्ष्म शरीर पर बराबर समानरूप से पड़ता है। अतः स्थूल शरीर के अवलम्बन से सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालकर चित्त वृत्तिनिरोध करने की जितनी शैलियाँ है उन सबको हठयोग के अर्न्तभूत ही समझना चाहिये। इस संदर्भ में इस खण्ड में हम इकाई 8 के अर्न्तगत हठयोग का अध्ययन मंत्रयोग, लययोग एवं तारकयोग के विशेष संदर्भ में करेगें।

हठयोग का स्वरूप –

यह योग का सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय प्रकार हो चला है। यह येाग का सबसे अर्वाचीन (नया) प्रकार है। इसकी परम्परा तो प्राचीन है, किन्तु विकसित स्वरूप और प्रचार की दृष्टि से इसका प्रभाव पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व कम था। हठयोग का मुख्य सिद्धान्त है **''ह''** और **''ठ''** का योग करना ''ह'' का अर्थ है नाभि के पास स्थिति **सूर्य** ''ठ'' का अर्थ है तालूमूल में स्थित **चन्द्रमा**। सूर्यनाड़ी अर्थात् (दाहिनी नासिका) तथा चन्द्रनाड़ी अर्थात् (बाँयी नासिका) की समानता यह भी हठयोग शब्द का अर्थ बनता है। इस ''ह'' और ''ठ'' से प्रवाहित प्राण जब समान होकर ''सुषुम्ना'' नाड़ी या मध्यनाड़ी में से संचारित होने लगते है तो इस स्थिति को ''हठयोग'' कहते है।

हठयोग की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का मूल आधार दो मूल तथ्यों पर आश्रित है –

1. शरीर और मन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है, तथा
2. प्राण और मन ये दोनों परस्पराश्रित हैं।

इन दो आधार भूत तथ्यों का हठयोग में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। हम द्वितीय प्रश्न पत्र हठयोग विज्ञान में हठयोग प्रदीपिका के परिचय में आगे अध्ययन करेगें कि हठयोग धारा के प्रमुख योगाचार्य ''स्वात्माराम'' ने अपनी हठयोग प्रदीपिका नामक रचना में शुरू में ही स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि हठयोग तो योग के प्रमुख प्रकार राजयोग की प्राप्ति में एक सीढ़ी के समान सहायक है जो योगों के अन्तिम लक्ष्य तक साधक को आसानी से प्रवेश करवाता है।

हठयोग के विशेष संदर्भ में **मंत्र योग एवं लययोग** को एक साथ रखकर देखे तो हमें प्राप्त होता है कि **''मंत्रयोग''** का प्रमुख आधारभूत सिद्धांत यह है कि यह समस्त दृश्य जगत् (विश्व) **स्पंदनों** से बना है। इन स्पंदनों को **मंत्रों के जप** से प्रभावित करके मनुष्य इच्छानुसार कुछ भी कर सकने में समर्थवान हो सकता है। मंत्रों में प्रमुखता से गायत्री मंत्र, प्रणव–जप, हंस–जप, आदि प्रमुखता से जानें जाते है।

लययोग अपना पृथक साधना परख अस्तित्व रखता है। जीव शरीर रूपी पिण्ड और समष्टिरूपी ब्रह्माण्ड ये दोनों समष्टि – व्याष्टि संबंध से एक ही हैं। अतः दोनों को एक समझकर अपने भीतर जो प्रकृति शक्ति है उसे अपने शरीरस्थ पुरूषभाव में लय करने की जो शैली है और उसके सहायक जितनी साधना प्रक्रियाये है, उनको **लययोग** कहते है।

तारक योग योग के विषय गूढ़ तथा व्यापक हैं। इस योग में अन्य योगों की भाँति क्रिया–प्रक्रियायें नहीं है।

इसमें योग का साधक एक ऐसा दीपवत् होता है, जिसमें दीपक के समान सभी सामर्थ्य विद्यमान होता है केवल लौ लगाने की देर रहती है। जैसे एक दीपक दूसरे को प्रकाशित कर अपने समान प्रकाशवान् करते चले जाता है तथा उसका कुछ भी प्रकाश कम नहीं होता है। उसी प्रकार **तारक योग** का मुख्य साधन **'प्रेम'** है। इसे **पराब्रह्मविद्या** भी कहा जाता है। इसके उत्पन्न होने से साधक निर्भय पद पर आसीन हो जाता है तथा तत्क्षण ब्रम्हीभावना में युक्त हो जाता है।

उपरोक्त तीनों योग **मंत्रयोग, लययोग** एवं **तारक योग** में साधक की चेतना सुषुम्मा में प्रवाहित होती है। इस कारण ये तीनों योग हठ्योग के विशेष संदर्भ में अध्ययन किये जावेगें।

हठयोग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

हठयोग का संबंध मुख्यतया शरीर और प्राण से है। हठयोग प्राणसाधना की विद्या है। इस प्राणसाधना का अंतिम लक्ष्य राजयोग की सिद्धि प्राप्त करना है। ऐसा स्वात्माराम भी हठयोग प्रदीपिका में मत रखते है।

''केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते''

महर्षि पंतजलि ने अपने योगानुशासन के धरातल पर चित्तवृत्तियों का निरोध करने हेतु मन और प्राण के संगम को साधने का उपदेश किया है। यह संयम करना ही हठयोग है, ''**ह**'' **प्राण** का वाचक है, तथा ''**ठ**'' **अपान** का वाचक है। प्राण और अपान का नाभिस्थान में आकर्षण कर उनका उर्ध्वमुखीकरण ही प्राण और मन का संयम है, प्राण और मन के संयमित होने पर चित्तवृति–निरोध रूप योग ही योगी की समाधि अवस्था में राजयोग की सिद्धि करता है। अतएव स्पष्ट है कि मन और प्राण के संयम से ही स्वरूपावस्था की उपलब्धि होती है।

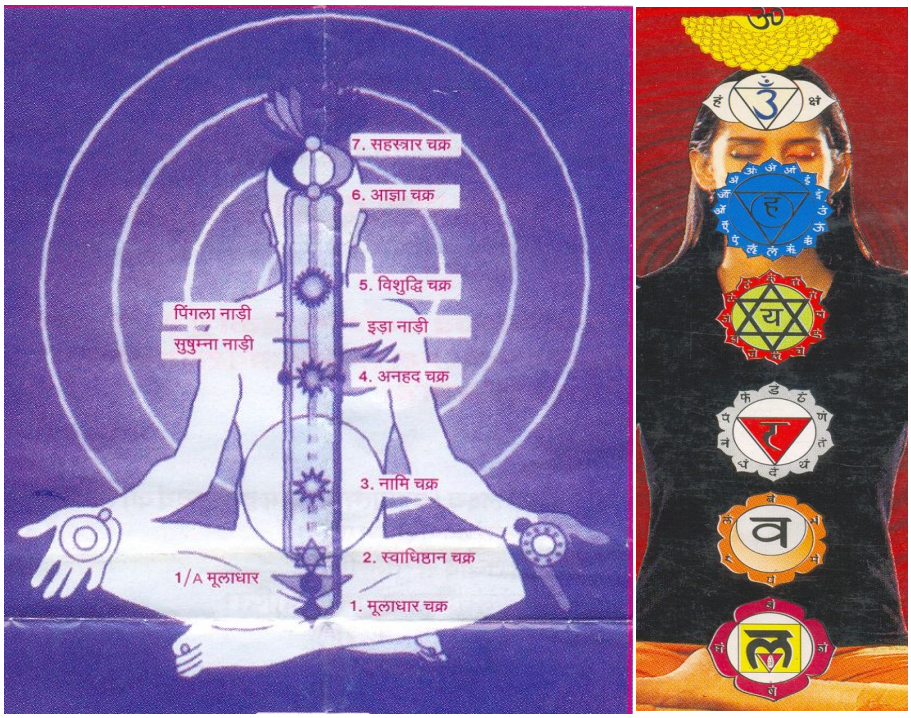

ह और **ठ** के मेल की विभिन्न प्रक्रियायें

हठयोग से शरीर समस्त व्याधियों से दूर होकर मन की निर्मल अवस्था को प्राप्त करता है। हद्रय की गति संतुलित होती है, चित्त की चंचलता का क्षय होता है और इस तरह साधक स्वस्थ होकर अपनी योगसाधना में तत्पर रहता है। साधनारत् योगी धीरे–धीरे इतना समर्थशाली हो जाता है कि वह जीवन्मुक्ति का आस्वादन करते हुए मृत्यु को टाल देता है, इस स्थिति को योग शब्दावली में **''कालवचन'** कहा जाता है। किन्तु मृत्यु को टालना मृत्यु को रोकना नहीं है, योगी **प्राकृतिक विधान** का उल्लंघन कर मृत्यु को रोकने का प्रयास नहीं करता, वह इसे जीवन की असंगति मानता है। मृत्यु को टालना एक दूसरी अस्थायी प्रक्रिया है। हठयोग की साधना प्रक्रिया परम्परा से प्राप्त होती आयी है, **आदिनाथ** शंकर द्वारा **माँ पार्वती** को उपदिष्ट योगज्ञानामृत की परम्परा **मत्स्येन्द्रनाथ,** से क्रमशः **गोरखनाथ** आदि की श्रृंखला में प्रज्जवलित होती आ रही है। श्रुति स्मृति आगम तथा तन्त्रादि में वर्णित योगविद्या यही **स्वसंवेद्य हठयोग पद्धति** है। अपरोक्षानुभूति ग्रंथ में **आचार्य शंकर** ने कहा है कि हठयोग उनके लिए है जिन्हें अपने शरीर और मन को मलदोषों से मुक्त और निर्मल करने की आवश्यकता है। **मनोनाश** के लिए दो **क्रम योग** और **ज्ञान** है। योग से **वृति निरोध** और ज्ञान से **वास्तविक स्वरूप** का दर्शन होता है। किसी के लिए योग असाध्य है तो किसी के लिए ज्ञान असाध्य है। हठयोग इन दोनों की सहायता करता है। **योग** और **ज्ञान** को **हठयोग** और **राजयोग** का अर्थ समझना कोई त्रुटि नहीं है। योग का तात्पर्य है जीवात्मा और परमात्मा की एकता, यही **योग विज्ञान** है। यह योग विज्ञान **श्रद्धा** से प्राप्त होता है। श्री कृष्ण ने श्रद्धा की महिमा का गीता में प्रकाशन किया है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः

(गीता 4/39)

इस श्लोक में **'संयतेन्द्रियः'** का तात्पर्य है **हठयोग** साधना में दक्ष और **''ज्ञान''** का तात्पर्य **राजयोग** की सिद्धि है।

हठयोग के प्रमुख ग्रंथ – हठयोग के प्रमुख ग्रंथों में निम्नलिखित ग्रंथ सम्मिलित है

1. मूलग्रंथ –

(i) शिवसंहिता (ii) गोरक्षसंहिता (iii) विवेकमार्तण्ड (iv) योगबीज (v) सिद्धसिद्धान्त पद्धति

(vi) महर्षि धेरण्ड की धेरण्डसंहिता

2. उपनिषद –

(i) अद्वयतारकोपनिषद् (ii) अमृतनादोपनिषद् (iii) अमृतबिन्दूपनिषद् (iv) मुक्तिकोपनिषद्

(v) तेजोबिन्दूपनिषद् (vi) त्रिशिखिब्रह्मणेपनिषद् (vii) दर्शनोपनिषद् (viii) ध्यानबिन्दूपनिषद्

(ix) नादबिन्दूपनिषद् (x) पाशुपतब्रह्मोपनिषद् (xi) मण्डलब्रह्मणोपनिषद् (xii) ब्रह्मविद्योपनिषद् (xiii) महावाक्योपनिषद् (xiv) योगकुण्डल्योपनिषद् (xv) योगचूड़ाण्युपनिषद् (xvi) योगतत्वोपनिषद्

(xvii) योगशिखोपनिषद् (xviii)वाराहोपनिषद् (xix) शाण्डिल्योपनिषद् (xx) हंसोपनिषद्

(xxi) योगराजोपनिषद्

3. परिवर्ती ग्रंथ –

(i) हठयोग प्रदीपिका (ii) योगचिन्तामणि (iii) हठरत्नावली (iv) हठसंकेतचन्द्रिका

(v) हठतत्वकौमुदी

हठयोग साधना क्रम के मूल विषय

1. आसन, 2. षट्कर्म, 3. युक्ताहार विहार, 4. प्राणायाम, 5. बन्ध ा, 6. मुद्रायें, 7. चक्रभेदन, 8. कुण्डलीजागरण तथा 9 . नादानुसंधान

हठयोग का परमलक्ष्य

हठयोग का परम लक्ष्य हठयोग प्रदीपिका (4/58) में स्पष्ट किया गया है कि संकल्पमात्र का त्याग ही मनोदृश्य का लय अथवा क्षय है, यही राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, शून्याशून्य, परमपद अमनस्क, अद्वैत निरालम्ब निरञजन, जीवन्मुक्ति, सहजाअवस्था (परमकैवल्य) है।

हठयोग के प्रमुख ऋषि

महर्षि, मार्कण्डेय, महर्षि भरद्वाज, महर्षि मरीचि, महर्षि जैमिनि, महर्षि पाराशर, महर्षि भृगु और महर्षि विश्वमित्र।

हठयोग के अंग

षट्कर्मासनमुद्राः प्रत्याहारश्च प्राणसंयामः।
ध्यानसमाधी सप्तैवाडं.ानि स्युर्हढस्य योगस्य।।

अर्थात् षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। इन **सात अंगों** से शरीर की शुद्धि **सात प्रकार** से होती है धेरडं संहिता के अनुसार – 1. शोधन, 2. दृढ़ता, 3. स्थैर्य, 4. धैर्य, 5. लाघव 6. प्रत्यक्ष, और 7. निर्लिप्त इत्यादि सात प्रकार से शरीर की शुद्धि होती है।

सारांशतः हठयोग स्थूल और सूक्ष्म प्राणिक स्पन्दनों के जागरण और सन्तुलन को निरूपित करता है। हठ शब्द वस्तुतः दो मंत्रों के योग से बना है जो **इड़ा** और **पिंगला** शक्तियों के द्योतक है। **ह** या **हं पिंगला नाड़ी** की ध्वनि है और **ठं** या **क्षं** हड़ा नाड़ी की ध्वनि है। यह आज्ञाचक्र का भी प्रतीक हैं। आज्ञाचक्र के कमल के दोनों दलों में ये ध्वनि स्पन्दन या तरंग निहित हैं। **ह प्राणिक शक्ति** को और **ठ मानसिक शक्ति** को प्रदर्शित करता है। ये दोनों एक ही शक्ति के दो रूप हैं जिससे संपूर्ण सृष्टि का सृजन एवं लय संचालित होता है हठयोग की प्रक्रिया से शारीरिक सहज विकास और मानसिक सूक्ष्म स्तरों की शुद्धि होकर व्यक्ति जीवन के चतुर्थ आयाम या तुरीय अवस्था की ओर प्रासृत होता है। जो सिद्ध होने पर राजयोग में परिणित होने के स्तरों पर बढ़ता जाता है।

3.4.2 मंत्रयोग का स्वरूप

मंत्रयोग दो शब्दों से मिलकर बना है। **मंत्र+योग** योग का विस्तृत अर्थ हम खण्ड 1, खण्ड 2 में अध्ययन कर चुके है। यहां **मंत्र** एवं मंत्रों द्वारा **योग** को प्राप्त करने पर ध्यान केन्द्रित करेगें।

मंत्र का सामान्य अर्थ हम अक्षरों या शब्दों की ध्वनियों के कम्पन से ग्रहण करते है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार मंत्र 'वह शक्ति है जो मन को बंधन से मुक्त करती है।' **मन** के अनेक व्युत्पात्तिक अर्थ प्राप्त है, उदाहरणार्थ

''मननात् त्रायते इति मन्त्रः''

1. मननात् = मन का बंधन
2. त्रायते = मुक्त
3. इति = द्वारा या इस प्रकार और
4. मन्त्रः = कम्पन की शक्ति

अर्थात वह शक्ति जो मन को बंधन से मुक्त करती है **मंत्र शक्ति** है। **जड़ एवं चेतन** से सेतु रूप मन जो अत्यंत चंचल एवं हठी है विषयों से जो कभी पूर्ण नहीं हो सकता है। इस मन का **निग्रह** करना अर्थात् **परिष्कार**

करना। यह परिष्कार चित्त की वृत्तियों अर्थात मानस–व्यापार के निरोध से संभव है। योग उपनिषदों में योग के अनेकों प्रकार बतायें गये है उनमें एक प्रकार मंत्रयोग भी है योग के अनुसार अणु रूप सूक्ष्म मन या मानसिक प्रकृति के दो निम्नलिखित गुण हैं जो इसे बंधनग्रस्त करते है।

1. मल (राजसिक–तामसिक गुण) अशुद्धियों से है और,
2. विज्ञेप या फैलाव या विखराव।

इन दोनों गुणों से यह अर्थ निकलता है कि **व्यक्त मन** में अशुद्धियाँ रहती हैं तथा वह विखरा हुआ या फैलाव लिये (चंचलता) रहता है। मन की इस चंचलाता को मंत्रों के द्वारा एकत्र करना अर्थात् विखराव को रोकना एवं उसकी अशुद्धियों को (राजसिक–तामसिक गुणों को शांत करना) **मंत्र योग** का आशय है। **हठयोग** के विशेष संदर्भ में यहाँ अध्ययन का कारण हठयोग के अधिकांश अंग **मंत्रयोग** के अंगों के अर्न्तगत समाहित होते है। मंत्र **कम्पन** है, **तरंग** है। अन्तिम कम्पन या तंरग या अन्तिम मंत्र **अनहद नाद** है। यह एक अणु के अन्दर के **कम्पायमान केन्द्र** की ध्वनि है। यह वह **अनहदनाद** है जिसका निश्चय ही कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि यह **ध्वनिरहित ध्वनि** है। यह यौगिक पदार्थ विज्ञान का क्षेत्र है। जहाँ भी गति होगी वहाँ निश्चय ही कम्पन्न होगा और उससे सूक्ष्म ध्वनि उत्पन्न होगी अणु निरंतर गतिशील रहते हैं और इसलिए वे एक कम्पन–समूह की रचना करते हैं। उस कम्पन–समूह के प्रति हमारी चेतना की सजगता किस स्तर पर ग्राह हूई होती है यह हम अपने **सूक्ष्म शरीर** के स्तर की गहराईयों में प्रवेश करके प्राप्त कर सकते है। मंत्रयोग की साधना के तीन पहलू है।

1. मन
2. सूक्ष्म शरीर
3. ध्वनि कम्पन या तरंग

मंत्रयोग का सिद्धांत

मंत्रयोग की साधना का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि इस सृष्टि की अंतिम सत्ता **परमात्मा** है। परमात्मा से **भाव** –**भाव** से **नाम–रूप,** और उसका विकार तथा **विलासमय** यह जगत् है।

इस कारण जिस क्रम से यह **सृष्टि** हुई है। उसके विपरीत मार्ग से ही **लय** होगा। अर्थात् **परमात्मा** से **भाव** और **भाव से नाम–रूप** द्वारा यह सृष्टि हुई है, जिससे समस्त जीव संसार बंधन में आ गये हैं तो यदि इस बंधन से मुक्त होना है तो साधना की एक प्रणाली **मंत्रयोग** है इसमें प्रथम नाम–रूप का आश्रय लेकर नाम–रूप से भाव मे और भाव से भावग्राही परमात्मा में **चित्तवृत्ति** का लय हो जाने से न चित्त रहेगा न वृत्तियाँ उठेंगी न बंधन का कारण जगत प्रंपच ही होगा। इस प्रकार मंत्रयोगी ऋषियों ने नाम और रूप के अवलम्बन से साधना की विधियों का निर्देश किया जो मंत्रयोग के रूप में जानी जाती है।

मंत्रयोग के प्रमुख ऋषि :– मंत्रयोग के प्रमुख ऋषियों मे निम्नलिखित प्रमुख ऋषि है –

1. देवर्षि नारद
2. देवर्षि पुलस्त्य
3. देवर्षि गर्ग
4. महर्षि वाल्मीकि
5. महर्षि भृगु
6. महर्षि वृहस्पति

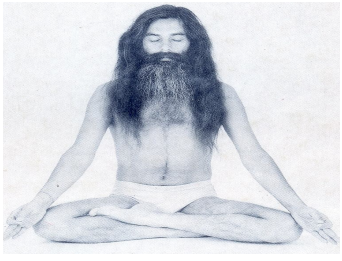

मंत्रयोग का साधक

मंत्रयोग साधना के प्रमुख अंग :– मंत्रयोग साधना के सोलह प्रमुख अंग है जो निम्नलिखित हैं –

1.	भक्ति	2.	शुद्धि	3.	आसन	4.	पचांगसेवन
5.	आचार	6.	धारणा	7.	दिव्य देश सेवन	8.	प्राण क्रिया
9.	मुद्रा	10.	तर्पण	11.	हवन	12.	बलि
13.	याग	14.	जप	15	ध्यान और	16.	समाधि

उपरोक्त अंगों का समावेश हठयोग के अंगों के सादृश्य ही है अन्तर केवल **समाधि प्राप्त** करने की स्थिति को लेकर ही है।

मंत्रों के प्रकार

मन को **मननीय शक्ति** प्रदान (एकाग्र) करके जप के द्वारा समस्त **भयों** का विनाश करके पूर्ण **रक्षा** करने वाले शब्दों को मंत्र कहा जाता है। मन्–त्र – ये दो शब्द इसमें हैं 'मन' शब्द से मन को एकाग्र करना 'त्र' शब्द से **प्राण (रक्षा)** करना जिनका धर्म है और जप से जो अभीष्ट फल प्रदान करें, वे मंत्र कहलाते है। मंत्रों के माध्यम से परम लक्ष्य को प्राप्त करना **तंत्र आगमों** की साधना विधि का नाम **मंत्रयोग** है। मंत्रों को निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा गया है।

1. पिण्ड मंत्र – इन मंत्रों में केवल एक अक्षर होता है
2. कर्तरी मंत्र – इन मंत्रों में दो अक्षर होते है
3. बीज मंत्र – इन मंत्रों में तीन से नौ अक्षर तक होते है
4. मंत्र – इन मंत्रों में दस से लेकर बीस अक्षर तक होते है
5. माला मंत्र – इन मंत्रों में बीस अक्षर से अधिक संख्या वाले मंत्र होते है

मंत्र – अभ्यास की प्रक्रियायें :– मंत्रों के अभ्यास की प्रक्रिया को जप भी कहा जाता है। भारतीय संस्कृति में जप या जाप से सामान्य अर्थ मंत्रों को कई बार दोहराने से भी लिया जाता है। मंत्रों के जाप या दोहराने के चार प्रकार निम्नांकित है –

1. बैखरी।
2. उपांशु या मध्यमा।
3. मनसि या पश्यन्ति और।
4. परा या भावातीत।

3.4.3 लययोग का स्वरूप

मन के विभिन्न स्तरों का **चेतना** में विलय होने को **लययोग** कहते है। जैसे कुण्डलिनी योग में प्राणशक्ति का विलय कर चेतना शक्ति को जाग्रत किया जाता है। **लययोग** का स्वरूप क्रियायोग और कुण्डलिनीयोग के सादृश्य हे। जहाँ क्रियायोग और कुण्डलिनी योग की साधना में **शक्ति केन्द्रों (चक्रों)** और नाड़ियों की जागृति प्रधानतः होती है जिनका अधिकत्तर संबंध आत्मि शरीर के अनुभवों से संबंधित रहता है। जबकि लययोग की प्रक्रिया प्रधानतः ध यानात्मक स्वरूप की है तथा चेतना की विभिन्न अभिव्यक्तियों से संबंधित होती हैं तथा शक्ति की अभिव्यक्ति के साथ उन्हें समायोजित करती है। तंत्रों के **क्रियायोग एवं कुण्डलिनीयोग** के समान ही **उपनिषदों** की साधना प्रणाली **लययोग** है। लययोग की प्रणाली में शक्ति के जागरण के साथ–साथ साधक को चेतना के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों (चिन्तन–प्रक्रिया, विश्लेषण प्रक्रिया एवं सजगता से चेतना में प्रवाह) की साधना को अपनाया जाता है। सिद्धान्तः शक्ति के रूपन्तरण द्वारा (जागरण द्वारा) चेतना के स्तरों का सम्यक प्रकार से समन्वयन (उन्नयन) करना ही लययोग का लक्ष्य है।

लययोग के प्रकार

लययोग के भगवान शिव ने **सवा करोड़** प्रकार बतलायें है। इन प्रकारों में स्वात्माराम ने (हठयोग प्रदीपिका 4/66) में **नदानुसंधान** को एक प्रमुख प्रकार बतलाया है। **कुण्डलिनीयोग** भी एक प्रमुख प्रकार है।

लययोग के प्रमुख अंग :– लययोग की साधना प्रक्रिया हेतु लययोग के नौ प्रमुख अंग निम्नलिखित बतलाये गये है

1. यम 2. नियम 3. स्थूल क्रिया 4. सूक्ष्म क्रिया
5. प्रत्याहार6. धारणा 7. ध्यान 8. लयक्रिया और
9. समाधि

लययोग के प्रमुख महर्षि :– लययोग की साधना प्रणाली को उपदेशित करने वाले प्रमुख महर्षि निम्नांकित है –

1. अगिंरा
2. याज्ञवल्कय
3. कपिल
4. पंतजलि
5. वशिष्ठ
6. कश्यप और
7. वेदव्यास

लययोग का सिद्धांत

प्रकृति और पुरूष के श्रंगार से उत्पन्न हुए **ब्रह्माण्ड** और **पिण्ड** दोनों एक ही है। समष्टि और व्यष्टि भाव से ब्रह्माण्ड और पिण्ड में केवल प्रतिकृति आकार भेद भर है। अतः पिण्ड के ज्ञान से ब्रह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता हे। साधना प्रक्रिया में **श्रीगुरू उपदिष्ट** शक्ति सहित पिण्ड का ज्ञान लाभ अर्जन करके **प्रकृति** को पुरूष में लय करने की प्रणाली **लययोग** कहलाती है, इस अर्थ में इसे ज्ञान योग (सांख्य) या राजयोग के स्वरूप में भी देखा जा सकता है। प्रकृति **(शक्ति)** और पुरूष **(शिव)** का योगांगो द्वारा कुलकुण्डलिनी नाम की महाशक्ति जो **आधारपद्म** में (मूलाधार चक्र) में प्रसुप्त अवस्था में रहती है। इस प्रसुप्त अवस्था को ही बर्हिमुखी सृष्टि क्रिया कहते है। इस प्रसुप्त शक्ति को जाग्रत कर (अन्तः मुखी कर) उर्ध्वगति से सहस्त्रार चक्र में स्थिर पुरूष (व्यष्टि चेतना का समष्टि चेतना में समाहन) से मिलाप या **संयोग** कर देना लययोग है।

कुण्डलिनी का सहस्त्रार चक्र में लय

लययोग के अंगों का स्वरूप :– लययोग के उपरोक्त वर्णित अंगों का संक्षिप्त क्रियात्मक स्वरूप निम्नांकित हैं

1. यम – बहिरिन्द्रियों को वश में (नियंत्रण) के साधन को **यम** कहते है
2. नियम – अन्तः इन्द्रियों को वश में (नियंत्रण) के साधन को **नियम** कहते है
3. स्थूल क्रिया – शरीर की विशेषस्थितियों (आसन) और मुद्राओं की साधना **को स्थूल क्रिया** कहते है।
4. सूक्ष्म क्रिया – आठ प्राणायामों और स्वरोदय की साधना को सूक्ष्म क्रिया कहते है। स्वरोदय

से सिद्धियाँ भी प्राप्त होती है

5. प्रत्याहार– मन को इन्द्रियों के आलम्बन से मुक्त कर स्थिर करने को **प्रत्याहार** कहते है।
6. धारणा – प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दूरूप की कल्पना करने को **धारणा** कहते है।
7. ध्यान – प्रत्याहार और धारणा का अभ्यास सध जाने पर योगी बिन्दू नाद के श्रवण में खो जाता है जिसे ध्यान कहते है।
8. लयक्रिया – मूलाधार से लेकर सहस्त्रार चक्र तक सात शक्ति केन्द्र है जिन्हें लाघता हुआ साधक जब **सहस्त्रार चक्र** में विश्रांति पाता है उस स्थिति को **लयक्रिया** कहते है।
9. समाधि – लयक्रिया से विश्रांत चित्त का स्वरूप में स्थित हो जाना **समाधि** है। इस प्रक्रिया में बिन्दु के नाद को श्रवण करने पर बिन्दू (प्रकृति) शुद्ध रूप में शेष रह जाती है इसे ही प्रकृति का **लय** या सम्यक् अधिष्ठित **समाधि** होना कहते है। इस अवस्था में **प्रकृति का स्पंदन** मूल स्पंदन हो जाता है। इसे **''महालय''** कहते है।

उपरोक्त लययोग के अंगों का स्वरूप को निम्नतालिका (क्रमांक 02) द्वारा दर्शाया गया है।

नाम	**स्थान**	**तत्व का गुण**	**रंग**	**देवता**	**दल**	**अक्षर**
मूलाधार	गुदा	गन्ध	लाल	गणेश	चार (4)	व,श,ष,स
स्वाधिष्ठान	लिंगमूल	रस	पीला	ब्रह्मा सावित्री	छः (6)	ब,भ,म,य,र,ल
मणिपूर	नाभि	रूप	नीला	विष्णु–लक्ष्मी	दस (10)	ड,ढ,ण,त,थ,द,ध,न,प,फ
अनाहत	हद्रय	स्पर्श	श्वेत	शिव–शक्ति	बारह(12)	क , ख ा , ग , घ ा,ड,च,छ,ज,झ,ञ,ट,ठ,
विशुद्धि	कण्ठ	शब्द	श्वेत	जीव	सोलह (16)	अ,आ,ई,इ,उ,ऊ,ऋ,ॠ, ऌ ऌ,ए,ऐ,ओ,औ,अं,अः
आज्ञा	भ्रूमध्य	महत्	श्वेत	ज्योति	दो (2)	हं, क्षं
सहस्त्रार	मस्तक	–	श्वेत	सदाशिव	हजार	20X50=1000

(तालिका क्रमांक 02)

चेतना के लोक या स्तर :– लययोग में चेतना के **उर्ध्वमुखीकरण** में चक्रों के अनुरूप ही लोकों का भी संबंध है। निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 03) के अनुसार चेतना के स्तर एवं उनके लोक दर्शित है।

क्र.	**चेतना का स्तर**	**लोक**

1.	मूलाधार	भू
2.	स्वाधिठान	भुवः
3.	मणिपुर	स्वः
4.	अनाहत	महः
5.	विशुद्ध	जनः
6.	आज्ञा	तपः
7.	सहस्त्रार	सत्य

(तालिका क्रमांक – 3)

3.4.4 तारक योग का स्वरूप

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में **तारकयोग** एवं **अमनस्कयोग** नाम से दो प्रकार के योगों का उल्लेख प्राप्त होता है।

पूर्वं तु तारकं विद्यादमनस्कंतदुत्तरमिति

(मण्डल ब्रा. 1.3)

तारक योग के भेद :– मण्डल ब्रह्माण्ड उपनिषद् के अनुसार तारक योग के दो प्रमुख भेद निम्नलिखित है।

1. मूर्तितारक योग तथा
2. अमूर्तितारक योग।

तारक योग का सिद्धांत :– तारक योग के उपरोक्त दो प्रकार के भेदों में इन्द्रियान्त को **मूर्तितारक योग** कहते है। तथा भ्रूयुगातीत को **अमूर्तितारक योग** कहते है। इन दोनों योगों का अभ्यास मन सहित करना चाहिए। भ्रूयुग के मध्य ध्यान करने से तेज का आविर्भाव होता है। इस प्रकार यह **पूर्वतारक योग** कहलाता है। **उत्तर तारक योग** को **अमनस्क योग** कहते है। तालु के मूल तथा उर्ध्वभाग में महाज्योति विद्यमान है। इसके दर्शन से अणिमदि की सिद्धि होती है।

तालूमूलोर्ध्वभागे महाज्योतिर्विद्यते
तदर्शनादणिमादि सिद्धिः।

(मण्डल ब्रा. 1.3)

इन दोनों प्रकार के योगों में ध्यान को प्रमुखता दी गई है। इस कारण भ्रूमध्य आदि स्थानों में ध्यान करने का विधान इन योगों की साधना प्रक्रिया का प्रमुख अंग है। इस उपनिषद् में इन योगों की एक विशेषता यह है कि जहाँ पांतजल योग में विभिन्न स्थानों में ध्यान करने का निर्देश है तो इसमें **कर्म भी** करते रहने का उपदेश है। सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त कर्म करते रहना चाहिए किन्तु यदि नासाग्र में दृष्टि जमाकर **प्रणव का जप** करते हुए उसकी **ध्वनि** में ही मन को **लीन** कर लिया जावे तो ऐसे साधक पर कर्म के संस्कार नहीं पड़ते है।

''तस्य न कर्मलेपः
रवेरूदयास्तमयमोः किल कर्म कर्त्तव्यम्।

तारक योग में एक प्रकार से **निष्काम कर्म** करते रहने का उपदेश किया गया है। गीता में इसी निष्काम कर्म का प्रतिपादन इतने बल से किया गया है कि इसे **निष्काम कर्मयोग** ही कहा जाने लगा।

मण्डल ब्राम्हणोपनिषद् के अनुसार उक्त दोनों प्रकार के योगों को करने का उद्देश्य मन को सर्वथा विषय रहित बना देना है क्योंकि **निर्विषय मन** ही **मोक्ष** प्राप्त कराता है तथा विषयों से युक्त मन बंधन का कारण बनता है।

सविषयं मनो बन्धाय निर्विषयं मुक्तये भवति

(मण्डल ब्रा. 4.1)

उपनिषदों में तारक योग का स्वरूप

उपनिषदों में तारक योग का वर्णन निम्नानुसार किया गया है –

1. गर्भजन्म जरामरण संसार महभ्दयात् संतारयति तस्मात् तारकम्।

(अद्वयतारकोपनिषद्)

अर्थात् इस नश्वर जगत् से बिना श्रम तारने वाला होने के कारण **''तारतम'' ज्ञान** भी इसी तारक योग का नाम है। तारक योग शक्तिसम्पन्न योगी को गर्भ, जन्म, जरा–मरण आदि सांसारिक **भय** नहीं रहते संसार जन्य कर्म क्लेश, विपाक, जन्म मरण आदि यावद् दुःख परम्परा से तारने के कारण ही **''तारक''** नाम अन्वर्थक है। इस तारतम्य से रहस्मय योग को प्राप्त कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है, उसे कुछ कर्त्तव्य शेष नहीं रहता, वह **जीवन्मुक्त दशा** में विचरने लगता है तब फिर **साधने** या **कर्म** करने को शेष क्या रहेगा। इसे **''मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति''** उसकी कौन कहे, वह तो विश्व को पावन करने लगा अब उसमें और ब्रम्ह में अन्तर शेष नहीं रह जाता है। **''ब्रम्हविद् ब्रह्मैव भवति''** अर्थात् वह स्वयं ही ब्रह्य तुल्य हो जाता है।

2. तस्मादन्तर्दृष्टया तारक एवानुसंधेयः

(अद्वयतारकोपनिषद्)

अर्थात विद्वानों को **आत्मदृष्टि** द्वारा **तारक योग** का अनुसंधान करना चाहिये। ऐसा **श्रुति** कहती है इसे ही **स्मृति** भी अनुमोदित करती है। स्मृति के अनुसार –

गुरूविश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्य निश्चितम्

इस तारक ज्ञान के प्रदान करने वाले गुरू को साक्षात् ईश्वर स्वरूप समझना चाहिए और **तारक ज्ञान योग** निश्चय ही ब्रह्यस्वरूप है। जो तारक योग प्रदान कर अन्य को भी अपने समान शक्तिसंपन्न बना देता है, वह ईश्वरस्वरूप तो है ही, इसमें संदेह क्या ?

पातंजल योग सूत्र में तारक योग

महर्षि पतंजलि ने भी **तारक योग** की महत्ता को प्रतिपादित किया है। महर्षि पतंजलि के अनुसार क्षण (वर्तमान) और उसके क्रमों में संयम करने से **विवेकज्ञान उत्पन्न** होता है। जिस प्रकार द्रव्य का सबसे छोटा विभाग जो भागरहित है, वह **परमाणु** है, वैसे ही **समय** की सबसे छोटी विभाग रहित गति **क्षण** है। उन क्षणों के प्रवाह का विच्छेद न होना अर्थात् बने रहना **क्रम** कहलाता है। **एक वर्तमान क्षण ही सत्य है**। उसी एक वर्तमान क्षण का परिणाम यह सारा **ब्रह्माण्ड** है। ऐसा जो एक वर्तमान क्षण है और उसका जो यह कल्पित क्रम है, उसका संयम करने से **विवेक ज्ञान** उत्पन्न होता है।

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्।

(योगसूत्र 3/54)

इस प्रकार विवेकज ज्ञान के चार लक्षण है –

1. **तारकम्** – बिना ब्राह्य निमित्त के अपनी प्रभा से स्वयं उत्पन्न होने वाला संसार सागर से तारने वाला है।
2. **सर्वविषयम्** –महदादिपर्यन्त सब तत्वों का विषय करने वाला।
3. **सर्वथाविषयम्** – सब तत्वों को सब अवस्था में स्थूल, सूक्ष्म आदि भेद से उनके तीनों परिणामों सहित सब प्रकार से विषय करने वाला।
4. **अक्रमम्** – क्रम की अपेक्षा से रहित होकर सबको एक क्षण में सब प्रकार से विषय करने वाला।

ये चारों **पूर्ण विवेक ज्ञान** हैं। इस ज्ञान की तुलना में **ऋतंभरा प्रज्ञा** वाली मधुमती भूमि इसका एक अंश है। यह ज्ञान की अन्तिम गति है, क्योंकि इसमें कोई वस्तु इसका अविषय नहीं रहती है।

विवेक द्वारा किया गया **'तारक योग ज्ञान'** बिना क्रम सब विषयों को प्रकाशित करता है। अर्थात् जैसे अन्य विद्या या योग क्रमशः धीरे–धीरे प्राप्त होते हैं, जबकि तारक योग तो काल से परे, अतीत–अनागत समस्त प्रपंच का प्रकाशक होते हुए **ब्रह्मसाक्षात्कार** कराने वाला है। इस कारण इसे **तारक योग** कहते है।

तारक योग की साधना

तारक योग एक मंत्र विशेष द्वारा प्राप्त ज्ञान को कहते है। जिसमें ब्रह्मसाक्षात्कार का भेद बताया गया है। इसे परा ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। इसका मुख्य साधन प्रेम है। जब तक सच्चा प्रेम उत्पन्न नहीं होता, वहाँ तक तारक योग सिद्ध नहीं होता। इसका बल प्रेम बिना प्रकट नहीं होता। अन्य क्रियाओं द्वारा सहायता तो मिलती है किन्तु इसका प्राण तो **'प्रेम'** ही है। प्रेमपुट लगते ही तारक ज्ञान अपूर्व योग को प्राप्त हो जाता है। प्रेम में दबाव न सही किन्तु आकर्षण है। भंयकरता नहीं किन्तु तल्लीनता है, अभिमान नहीं किन्तु अपनापन है, नैराशय नहीं अपितु विश्वास है। अतएव **'तारक योग'** प्राप्त करने के लिए प्रधान साधनभूत **सच्चा प्रेम** ही माना गया है।

प्रेम द्वारा इसे प्राप्त करते विलम्ब नहीं। इस योग में एक अपूर्व विशेषता यह है कि इसका सम्यक् ज्ञान होते ही मनुष्य पद्यपलाशवत् निर्लिप्त होकर निर्भय विचरने लग जाता है और **सच्चिदानन्द** के ज्ञान का अनुभवी होकर किसी प्रकार के विक्षेप को प्राप्त नहीं होता है। **भावातीत** हो जाना इसकी प्रमुख विशेषता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5. हठ्योग साधना क्रम के मूल विषय एवं अंग बतलाइये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

6. मंत्रयोग का सिद्धांत बतलाईये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3.5 सारांश

इस खण्ड के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि योग विज्ञान के कितने प्रकार है। **इकाई 7** में आपने **राजयोग** का विस्तृत अध्ययन किया जिसके अन्तर्गत राजयोग साधना, राजयोग साधन के अंग, राजयोग साधना का साधन क्रम, क्या है यह जाना। राजयोग के ही विशेष संदर्भ में आपने कर्मयोग भक्तियोंग एवं ज्ञानयोग का भी अध्ययन किया। **कर्मयोग** के अन्तर्गत कर्मयोग का स्वरूप, कर्मो की कोटियाँ, कर्मयोग की परिभाषाएँ, कर्मयोग की विशेषताओं में (1) केवल नियम कर्म का विधान (2) फल की इच्छा का अभाव (3) आसक्ति का अभाव (4) समत्व बुद्धि (5) सर्वत्र समान व्यवहार (6) काम्य संकल्पों का भी त्याग एवं (7) कर्मों का ईश्वरार्पण तथा शरणागति भाव के बारे में जानकारी प्राप्त की। **भक्ति योग** के स्वरूप के अन्तर्गत भक्ति योग का अर्थ, भक्ति योग के साधन, भक्तों के चार प्रकार, अर्थार्थो, आर्त्त, जिज्ञासु एवं ज्ञानके बारे में अवगत हुये। भक्ति के नौ प्रकारों की भी जानकारी प्राप्त हुई। हमने भक्तियोग के उपदेश की भी जानकारी प्राप्त की । इसके उपरांत **ज्ञानयोग** के स्वरूप का अध्ययन किया इसके अन्तर्गत ज्ञानयोग की विशेषताएँ, ज्ञान योग में समत्व का स्वरूप, जिसमें (1) आत्मगत समत्व (2) वस्तुगत समत्व, (3) गुणातीत समत्व का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद ज्ञानयोग का उपदेश, ज्ञान योग के भेद, जिसके अन्तर्गत (1) ब्रह्ममयी सृष्टि (2) मायात्मक जगत् एवं (3) प्रतीयमान विश्व ब्रह्म की जानकारी भी प्राप्त की गई।

इकाई 8 के अन्तर्गत हमने **हठयोग** का स्वरूप, मंत्रयोग, लययोग, एवं तारक योग के विशेष संदर्भ में अध्ययन किया। हठयोग के अन्तर्गत हठयोग का स्वरूप हठयोग के मूलाधार, हठयोग की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि, हठयोग के प्रमुख ग्रंथ, हठयोग के मूलग्रंथ, हठयोग के उपनिषद, हठयोग के परिवर्ती ग्रंथ, हठयोग साधना क्रम के मूल विषयों एवं हठयोग के ऋषियों तथा हठयोग के सात अंगों का ज्ञान प्राप्त किया। **मंत्रयोग** के स्वरूप के अन्तर्गत मंत्रका अर्थ, मंत्रयोग का सिद्धांत, मंत्रयोग के प्रमुख ऋषि, मंत्रयोग साधना के प्रमुख अंग, मंत्रों के प्रकार जिसमे ंपिण्ड मंत्र, कर्तरीमंत्र, बीज मंत्र, मंत्र एवं माला मंत्र का अध्ययन हमने किया हमने मंत्रों के जप के प्रकारों में चार प्रकारों का भी अध्ययन किया। **लययोग** के स्वरूप के अन्तर्गत लययोग के प्रकार, प्रमुख अंग, सिद्धांत, अंगों का स्वरूप, जिनमें यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्म क्रिया , प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया एवं समाधि का अध्ययन किया। लययोग के अंगों की तालिका, चेतना के लोक या स्तरों की तालिका का भी अध्ययन हमने किया। इसके उपरांत **तारक योग** का अध्ययन हमने किया। जिसमें तारक योग का स्वरूप, भेद, औपनिषदिक स्वरूप, **पांतजलयोग में तारक योग** का स्वरूप, का अध्ययन हमने किया इन अध्ययनों से हम योग के विविध प्रकारों एवं **योग साधना के मर्म** को समझ सकने में सक्षम हुये।

सारांशतः योग दर्शन की संकल्पना को एवं योग दर्शन की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि को जब आपने योग दर्शन के प्रकारों एवं भेदों के रूप में अध्ययन किया तो आप अब यह समझने के योग्य हो गये कि इन सभी योगों का महत्व क्या है एवं किस प्रवृति के व्यक्ति को कौन सा योग अपनाना चाहिए।

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 राजयोग के अंग बताइये ?

उ. जिस प्रकार चन्द्रमा की पूर्णता के लिए सोलह कलाएँ आवश्यक है उसी प्रकार राजयोग की पूर्णता हेतु राजयोग के सभी क्रमिक अंगों की आवश्यकता होती है। इन अंगों के निम्नांकित प्रकार है –

1. ज्ञान की सात भूमिकाओं का होना। ये निम्नलिखित है –
   (i) शुभेच्छा (ii) सुविचारणा (iii) तनुमानसा (iv) सत्वापत्ति (v) असंसाक्ति
   (vi) पदार्थ भावनी और (vii) तुर्यगा
2. धारणा दो प्रकार की होती है।
   (i) प्रकृति (ii) ब्रह्म
3. ध्यान : ध्यान के तीन प्रकार होते है।
   (i) विराट्ध्यान (ii) ईशध्यान (iii) ब्रह्मध्यान
4. समाधिः समाधि के दो प्रकार है।
   (i) सम्प्रज्ञात समाधि इसके चार भेद है –
      (a) वितर्कनुगम (b) विचारनुगम (c) आनन्दानुगम(d) अस्मितानुगम
   (ii) असम्प्रज्ञात या निर्वीज : इसके दो भेद है –
      (a) भवप्रत्यय और (b) उपायप्रत्यय।

प्र.2 गीता में कर्मों की कोटियाँ कौन–कौन सी बताई गई है लिखिये ?

उ. **कर्मों की कोटियाँ**

निष्काम कर्मयोग में **कर्म** ही वह कार्यकारी उपादान है, जिसके माध्यम से योग रूपी भव्य भवन का निर्माण होता है। यद्यपि कर्मों की गति अत्यन्त गहन तथा कठिन है फिर भी गीता में विभिन्न सन्दर्भों के अनुरूप **कर्मों** को

निम्न कोटियों में निर्दिष्ट किया गया है –

क्र.	प्रकार	प्रकार	प्रकार
1.	कर्म	अकर्म	विकर्म
2.	सात्विक	राजस	तामस
3.	शारीरिक	मानसिक	वाचिक
4.	इष्ट	अनिष्ट	मिश्रित
5.	शुभ	अशुभ	शुभाशुभ
6.	संचित	प्रारब्ध	क्रियमाण

मानासिक भावना ही क्रियाओं के कर्म, अकर्म तथा विकर्म बनाने में मूल हेतु है। कर्म का स्वरूप एक दीखने पर भी मानसिक भावना में अन्तर होने के कारण उनके स्वरूप तथा परिणामों में भी अन्तर आ जाता है। कोई भी क्रिया साधारण कामना रहने से कर्म, किसी को अनिष्ट पहुँचाने की भावना होने से विकर्म तथा कामनारहित होने से अकर्म या निष्कामकर्म बन जाता है।

प्र. 3 भक्तों के प्रकार कौन–कौन से है बताइये ?

उ. **भक्तों के प्रकार** :– भक्ति योग के संबंध में भक्तों के चार प्रकार निम्नानुसार बतलाये गये हैं –

1. अर्थार्थी :– जो भक्त धन की कामना से भक्ति करता है, उसे अर्थाथी भक्त कहा जाता है।

2. आर्त्त :– जो भक्त सांसारिक दुःखों से मुक्ति के लिए भगवान का भजन करता है, उसे आर्त भक्त कहा जाता है।

3. जिज्ञासु :– जो भक्त भक्ति के स्वरूप को ही समझने के लिए भक्ति करता है, उसे जिज्ञासु भक्त कहा जाता है।

4. ज्ञानीभक्त :– जो भक्त अनन्य भाव से भगवान की प्राप्ति हेतु भक्ति करता है, उसे ज्ञानी कहा जाता है। भगवान कृष्ण ने ज्ञानी भक्त को ही सर्वोत्तम भक्त बताया है। भगवान श्री कृष्ण कहते है कि ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है, ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप है।

प्र. 4 ज्ञानयोग की विशेषताएं लिखिये ?

उ. **ज्ञानयोग की विशेषताएँ** :– ज्ञानयोग की निम्नांकित विशेषताएँ है –

1. यह संपूर्ण दृश्यमान जगत् परमात्मा का स्वरूप है, परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है।

2. दृश्यमान जगत् मिथ्या है। यह कार्य है–विकार है। इस कारण ब्रम्ह ही सत् है।

3. इस मिथ्या जगत् में ज्ञानी के लिए कोई भी कार्य नहीं। ब्रम्ह ज्ञान में सभी कार्यों का पर्यवसान है। ब्रह्मज्ञानी को कुछ पाना नहीं रहता। अतः वह कोई कार्य नहीं करता है।

4. ज्ञानी की दृष्टि में **''समता''** होती है वह सबको ब्रह्मरूप या एकरूप समझता है। प्राणिमात्र में वह अभेददर्शन करता हैं।

प्र. 5 हठयेाग साधना क्रम के मूल विषय एवं अंग बतलाइये ?

उ. **हठयोग साधना क्रम के मूल विषय**

1. आसन, 2. षट्कर्म, 3. युक्त्ताहार विहार, 4. प्राणायाम, 5. बन्ध,
6. मुद्रायें, 7. चक्रभेदन, 8. कुण्डलीजागरण, एवं 9. नादानुसंधान

हठयोग का परमलक्ष्य :–

हठयोग का परम लक्ष्य हठयोग प्रदीपिका (4/58) में स्पष्ट किया गया है कि संकल्पमात्र का त्याग ही मनोदृश्य का लय अथवा क्षय है, यही राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, शून्याशून्य, परमपद अमनस्क, अद्धैत निरालम्ब निरंजन, जीवन्मुक्ति, सहजाअवस्था (परमकैवल्य) है।

हठयोग के प्रमुख ऋषि :–

महर्षि, मार्कण्डेय, महर्षि भरद्वाज, महर्षि मरीचि, महर्षि जैमिनि, महर्षि पाराशर, महर्षि भृगु और महर्षि विश्वमित्र

हठयोग के सात अंग :–

षट्कर्मासनमुद्राः प्रत्याहारश्च प्राणसंयामः।
ध्यानसमाधी सप्तैवाडानि स्युर्हढस्य योगस्य।।

अर्थात् षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। इन **सात अंगों** से शरीर की शुद्धि सात प्रकार से होती है धेरड संहिता के अनुसार – 1. शोधन, 2. दृढ़ता, 3. स्थैर्य, 4. धैर्य, 5. लाघव 6. प्रत्यक्ष, और 7. निर्लिप्त इत्यादि सात प्रकार से शरीर की शुद्धि होती है।

प्र. 6 मंत्र योग का सिद्धांत समझाइये ?

उ. **मंत्रयोग का सिद्धांत :–**

मंत्रयोग की साधना का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि इस सृष्टि की अंतिम सत्ता परमात्मा है। परमात्मा से भाव –भाव से नाम–रूप, और उसका विकार तथा विलासमय यह जगत् है।

इस कारण जिस क्रम से यह सृष्टि हुई है। उसके विपरीत मार्ग से ही लय होगा। अर्थात् परमात्मा से भाव और भाव से नाम–रूप द्वारा यह सृष्टि हुई है, जिससे समस्त जीव संसार बंधन में आ गये हैं तो यदि इस बंधन से मुक्त होना है तो साधना की एक प्रणाली **मंत्रयोग** है इसमें प्रथम नाम–रूप का आश्रय लेकर नाम–रूप से भाव में और भाव से भावग्राही परमात्मा में **चित्तवृत्ति का लय** हो जाने से न चित्त रहेगा न वृत्तियाँ उठेंगी न बंधन का कारण जगत प्रंपच ही होगा। इस प्रकार मंत्रयोगी ऋषियों ने नाम और रूप के अवलम्बन से साधना की विधियों का निर्देश किया जो मंत्रयोग के रूप में जानी जाती है।

3.7 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

(1) हठयोग प्रदीपिका — **रामलाल श्रीवास्तव** प्रकाशक श्री गोरखनाथ मंदिर गोरखपुर उ.प्र.

(2) भारतीय दर्शन खण्ड I ,एवं II — **डॉ. राधाकृष्णनन्** प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्न कश्मीरी गेट दिल्ली – 6

(3) संस्कृतशास्त्रों का इतिहास — **बलदेव उपाध्याय** प्रकाशक हिमालय प्रेस, वाराणसी

(4) भक्तियोग — **स्वामी विवेकानन्द** प्रकाशक अद्वैत आश्रम, कलकत्ता

(5) कर्मयोग — **स्वामी विवेकानन्द** प्रकाशक अद्वैत आश्रम, कलकत्ता

(6) ज्ञानयोग — **स्वामी विवेकानन्द** प्रकाशक अद्वैत आश्रम, कलकत्ता

(7) हठयोग – एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं हठयोग प्रदीपिका — **सुरेन्द्र कुमार शर्मा** प्रकाशक ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली

(8) योग का वैज्ञानिक रहस्य — **श्री रमणदास महात्यागी** प्रकाशक चौखम्बा ओरिएन्टालिया वाराणसी प्रथम संस्करण

(9) श्रीमद्भागवत गीता — प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर (उ.प्र.)

(10) योग दर्शन और धर्म — **एस.एन.दास गुप्ता** प्रकाशक मोतीलाल बनारसी दास प्रा.लि. दिल्ली